भारत का विधि आयोग

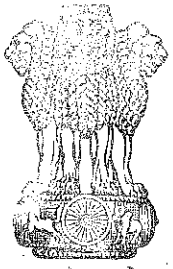

सत्यमेव जयते

भारत सरकार

मुकदमेबाजी के खर्चे

पर

एक सौ अट्ठाईसवीं रिपोर्ट

1988

1—279 M of L&J ND/89

भारत का विधि आयोग

मुकदमेबाजी के खर्चे

पर

एक सौ अट्ठाइसवीं रिपोर्ट

1988

डी० ए० देसाई,
अध्यक्ष

टेलिफोन सं० 384475
विधि आयोग,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-1
1 जुलाई, 1988

अर्ध शा० सं० 6(2)(8)187-वि०आ०

श्री शंकरानंद,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली

प्रिय श्री शंकरानंद,

आपके द्वारा विधि और न्याय मंत्रालय का कार्यभार संभालने के पश्चात् शीघ्र ही मुझे न्यायिक सुधारों के अध्ययन के संदर्भ में निर्देश निबंधनों के निबंधन सं० 8 के संबंध में 'मुकदमेबाजी का खर्चा' पर भारत के विधि आयोग की 128वीं रिपोर्ट इस पत्र के साथ भेजने में प्रसन्नता हो रही है ।

अब तक आपको ज्ञात हो गया होगा कि भारत सरकार न्यायिक सुधार आयोग की स्थापना करने का विचार कर रही थी । बाद में न्यायिक सुधारों के अध्ययन और उनकी सिफारिशों का कार्य वर्तमान विधि आयोग को इस अनुरोध के साथ सौंपा गया कि वह इसे प्राथमिकता दे । तदनुसार विधि आयोग ने अपनी कार्य सूची का पुन: समायोजन किया और इस देश में न्याय प्रणाली में सुधारों की जांच और उनकी सिफारिश करने को प्राथमिकता दी । विधि आयोग का दृष्टिकोण ग्राम न्यायालय पर इसकी प्रथम रिपोर्ट (114वीं रिपोर्ट) के अध्याय 2 में अधिकथित किया गया था । उस दृष्टिकोण से संगत, वर्तमान विधि आयोग ने विभिन्न निर्देश निबंधनों के संबंध में 14 रिपोर्टें तैयार कीं और भेजीं । प्रयत्न, न्याय प्रणाली में निम्नतर स्तर से शिखर स्तर तक की पुन: संरचना करने और उसमें सुधार करने का रहा है जिससे अतिविस्तृति, प्ररूपिकता, खर्चीलापन, विलंब और अनंतमय स्वरूप जैसे उसके कुछ भद्दे लक्षणों को दूर किया जा सके । लक्ष्य प्रणाली को लचीला, सुगमता से पहुंच योग्य, पूर्णतया अप्ररूपिक, सस्ता और न्यायोन्मुख बनाने का है ।

इस रिपोर्ट को पूर्वतर तीन रिपोर्टों में समाविष्ट पैकेज के भागरूप पढ़ा जाए अर्थात् न्यायपालिका में जनशक्ति योजना : एक ब्ल्यू प्रिंट, जो विधि आयोग की 120वीं रिपोर्ट है जिसमें आगामी पांच वर्षों में न्यायाधीशों की संख्या के अनुपात को पुनरीक्षित करने की सिफारिश की गई थी । इसके पश्चात् 121वीं रिपोर्ट दी गई जिसमें प्रत्येक स्तर पर न्यायाधीशों के चयन और भर्ती के लिए एक नये मंच, जिसका नाम राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग हो, की सिफारिश की गई थी । विधि आयोग ने, इस बात का ज्ञान रखते हुए कि न्यायाधीशों के जनसंख्या से अनुपात की वृद्धि करके न्यायिक प्रशासन के विस्तार से अधिक व्यय होगा और प्राय: अतिरिक्त व्यय करने में कुछ अनिच्छा होगी क्योंकि न्यायिक प्रशासन पर व्यय को योजनेतर व्यय समझा जाता है, उन साधनों की जांच की जो इस प्रणाली द्वारा साधारण व्यक्ति पर अतिरिक्त भार डाले बिना स्वयं उत्पन्न किए जा सकते हैं । इस संबंध में न्यायिक प्रशासन में अवसंरचनात्मक सेवाओं के लिए साधन आबंटन पर 127वीं रिपोर्ट दी गई ।

जैसा कि साधारण अनुभव है, वर्तमान प्रणाली अति खर्चीली है जो न्याय तक पहुंच में बाधा का कार्य करती है । इसलिए यह वांछा की गई कि विधि आयोग वादियों पर भार को कम करने की दृष्टि से मुकदमेबाजी के खर्चे की जांच करे । इस प्रश्न के पूरक के रूप में 'न्यायालय फीस का सुव्यवस्थीकरण' पर विधि मंत्रियों की समिति की रिपोर्ट के साथ विधि आयोग को विधि और न्याय मंत्रालय (न्याय विभाग) से एक निर्देश प्राप्त हुआ, वह निर्देश भी इस रिपोर्ट से निपटा दिया गया है । यदि पहले वर्णित तीन रिपोर्ट और वर्तमान रिपोर्ट एक पैकेज के रूप में कार्यान्वित की जाती है तो विश्वसनीय रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रणाली से न केवल उसके अपने साधनों का जनन होगा बल्कि साधारण व्यक्ति पर से भी भार हट जाएगा जैसा संविधान के अनुच्छेद 39क में परिकल्पित है । जो लक्ष्य प्राप्त करना है

वह यह है कि जहां समाज के निर्धन अनुभागों को अपनी आर्थिक असमर्थता की आड़चन के बिना न्याय तक पहुंच होगी वहां न्याय की उपलब्धता सस्ती, अप्ररूपिक और सुगमता से प्राप्य होगी । दूसरी ओर जो देने के योग्य है समाज के बृहतर हित में अतिरिक्त भार सहन करेंगे ।

मैं इन रिपोर्टों के शीघ्र और तत्काल कार्यान्वयन की आशा करता हूं ।

अभिवादन सहित,

अनुलग्नक : एक रिपोर्ट

भवदीय
ह०/-
(डी० ए० देसाई)

विषय सूची

अध्याय		पृष्ठ
1.	प्रस्तावना	1
2.	मुकदमेबाजी के खर्चे के संघटक	4
3.	मुकदमेबाजी के खर्च के संघटक के रूप में न्यायालय फीस और उसका सुव्यवस्थीकरण	11
4.	प्रत्याशाएं	21
	टिप्पण और संदर्भ	23
	उपाबंध	
	निष्कर्षों/सिफारिशों का सारांश : न्यायालय फीस के सुव्यवस्थीकरण पर विधि मंत्रियों की समिति की रिपोर्ट ।	25

2—279 M. of L & J/ND/89

अध्याय I

प्रस्तावना

1.1. इस देश में प्रचलित न्याय प्रणाली जिन कई बुराईयों से ग्रस्त है उनमें से एक जिसने न्यायालयों से संबंधित और उनके कार्यकरण में हितबद्ध सभी व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित किया है वह भारतीय न्यायालयों में मुकदमेबाजी का अधिक खर्चा है। इसलिए जब भारत सरकार ने न्यायिक सुधार आयोग स्थापित करने का विनिश्चय किया और बाद में वह कार्य वर्तमान विधि आयोग को सौंपा तो निर्देश निबंधनों में एक निबंधन निम्नलिखित था।

"8. वादियों पर भार कम करने की दृष्टि से मुकदमेबाजी का खर्चा"।

मुकदमेबाजी धनी लोगों के लिए विलास का विषय हो गई है यह स्वयंसिद्ध प्रतिपादना है। यह एक पुरानी कहावत है कि यदि न्यायालय में मुकदमेबाजी को खर्चा लाभ अनुपात लागु किया जाए तो कई बार खर्च मुकदमेबाजी से होने वाले लाभ से बहुत अधिक हो जाता है। यदि उन लोगों का सर्वेक्षण किया जाए जो शिकायतों को दूर कराने के लिए न्यायालय में वाद लाने वाले हैं किन्तु मुकदमेबाजी के प्रतिषेधात्मक खर्चे ने उन्हें यह कार्य करने से रोक दिया तो सर्वेक्षण के परिणाम प्रकटनकारी होंगे। कई बार मुकदमेबाजी दोष से या अन्याय से बचने के लिए नही किन्तु दुसरे पक्ष को यथासंभव अधिकतम हानि पहुंचाने की स्वार्थी सनक होती है। ऐसी स्थिति में मुकदमेबाजी के खर्चे का स्थान गौण हो जाता है। इस वर्ग के मामलों का अपवर्जन करते हुए मुकदमेबाजी आरंभ करने का विनिश्चय करते समय वादी के दृष्टिकोण का मूल्यांकन करने में मुकदमेबाजी का खर्चा एक महत्वपूर्ण कारण है। समस्या को प्रतिवादी के दृष्टिकोण से भी, जिसे न्यायालय में घसीटा जाता है, कि उसे अपने अधिकार की प्रतिरक्षा करने में खर्चे का कितना भार उठाना होगा विचार करना होगा। मुकदमेबाजी के खर्चे के अनेक आयाम हैं : (1) न्याय प्रणाली स्थापित करने और उसे बनाए रखनें में राज्य का खर्चा (2) वादी का खर्चा और (3) समाज का खर्चा। इस रिपोर्ट में विधि आयोग का मुख्य कार्य वादियों पर मुकदमेबाजी के खर्चे का भार कम करने का है।

1.2. पर्याप्त और दक्ष न्याय प्रणाली को स्थापित करने और बनाए रखने में राजकोष पर भार की जांच विधि आयोग ने की है।[1] प्रभावी और दक्ष न्यायप्रणाली के लिए व्यवस्था करने के लिए समाज द्वारा सहन किए गए खर्चे के लिए विश्लेषण और गंभीर जांच की अपेक्षा है। यह इस रिपोर्ट की परिधि से बाहर है । इस रिपोर्ट में पूर्ण बल वादियों द्वारा सहन किए गए खर्चे पर है ।

1.3. न्याय तक पहुंच में क्या बाधाएं हैं? वे अनेक और निम्नप्रकार की हैं। न्याय तक पहुंच में एक अड़चन आर्थिक बाधा मानी गई है जो साधारण शब्दों में मुकदमेबाजी का उच्च खर्चा कही जाती है। यह इतनी प्रत्युत्पादक हो गई है कि कई वादी, यह आशंका की जाती है, प्रतिवेधात्मक खर्चे के कारण न्यायालय में जाने का विचार छोड़कर साधनों के अभाव में अन्याय सहन करते हैं। यह व्यर्थ कल्पना नहीं है। अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी लाखों विवाद और लाखों वादी जो प्रक्रिया की महंगाई के कारण अपवर्जित किए जाते हैं इसके मुख्य शिकार हैं। औपचारिक न्यायालयों में मुकदमेबाजी करदाताओं और वादियों दोनों के लिए महंगी कल्पना है।[2] न्यायालयों में मुकदमेबाजी का अधिक खर्चा कई वादियों को सताने वाला हो सकता है। किन्तु कुछ के लिए यह पूर्ण वर्जन हो सकता है। "दावा चाहे कितना ही अच्छा और प्रतिरक्षा कितनी अच्छी क्यों न हो, निम्न आय वाला व्यक्ति (मध्यम वर्ग में भी कई) अधिकतर मामलों में मुकदमेबाजी करने में समर्थ नहीं होंगे[3]"। अमरीका में सुधार का एक आन्दोलन चल रहा है जो मुकदमेबाजी का खर्चा कम करेगा। सुधार के लिए तलाश से यह तथ्य प्रकट हुआ है कि बड़ी संख्या में विवादों का निपटारा नहीं हो पाता है जो समाज के स्वास्थ्य और भलाई में सहायक नहीं है। सुधार आन्दोलन का उद्देश्य न्याय को कम खर्चिला बनाकर इसे अधिक सुगम बनाना है।

1.4. इस बात से सभी सहमत हैं कि अमरीका की स्थिति की तुलना में भारतीय स्थिति अधिक खराब है क्योंकि भारत गरीबी की रेखा से निचे रहने वाली बड़ी जनसंख्या वाला एक विकासशील देश है। गरीबी को दूर करने के लिए राज्य ने कई कार्यक्रम आरंभ किए हैं। ये कार्यक्रम अधिकारों का सृजन करते हैं।

इन अधिकारों के बारे में जागरूकता हिताधिकारियों तक भी हो गई है। किन्तु अधिकारों का अस्तित्व या उनके बारे में जागरूकता से कोई राहत नहीं मिलती। जो बात महत्वपूर्ण है वह है अधिकार से उद्भुत फायदे के उपभोग के अधिकार का प्रवर्तन। जैसे ही आप प्रवर्तन की बात करते हैं न्यायालयों की बात आ जाती है और उसके साथ खर्च की बात। खर्चा सहन करने की असामर्थ्य अधिकार को प्रवर्तित कराने के प्रयास को लाभप्रद नहीं बनाती है। कार्यक्रम और उसमें सृजित अधिकार तंग करने वाली धारणा बनकर रह जाते हैं।

1.5. मुकदमेबाजी के बढ़ते हुए खर्चे की विक्षोभकारी बात ने संसद् का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। जब कि संविधान में यह आज्ञापक निदेश है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राप्ति करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करेगा किन्तु इस वचन को वास्तविक रूप देने के लिए संविधान में कोई प्रभावकारी उपबंध नहीं था। संविधान में अनुच्छेद 39क का 1976 में समावेश किया गया। इसमें यह उपबंध है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाय, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा। इस अनुच्छेद को प्रविष्ट करने में संसद् ने यह जागरूकता दिखाई कि कई कानूनों द्वारा आर्थिक और सामाजिक रुप में समाज के असुविधाग्रस्त अनुभागों को अधिकार, विशेषाधिकार और रियायतें दी गई हैं किन्तु वे स्वयं अपने प्रयास से इन अधिकारों को प्रवर्तित कराने या विशेषाधिकारों और रियायतों का उपभोग करने की स्थिति में नहीं हैं और जब तक यह नहीं किया जाता तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि विधिक तंत्र न्याय को सुलभ करता है क्योंकि न्याय प्रणाली देश के विधिक तंत्र का पूर्णांकी भाग है । किसी व्यक्ति को जिसका कि अधिकार है उसके लाभ से इन्कार नहीं किया जाना चाहिए । इस अधिकार के प्रवर्तन और बचाव के लिए कोई मंच होना चाहिए । उस मंच तक पहुंच भौगोलिक, भौतिक या आर्थिक बाधाओं की अड़चनों के बिना होनी चाहिए । न्याय प्रणाली प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह समाज के किसी भी वर्ग से हो, आसानी से सुलभ होनी चाहिए । आर्थिक या कोई अन्य निर्योग्यता न्याय तक पहुंच में बाधा नहीं होनी चाहिए । अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए आर्थिक असमर्थता का उपचार किया जाना चाहिए । यह दो तरीकों से हो सकता है । (I) मुकदमेबाजी का खर्चा पर्याप्त रूप से कम करके और (II) जहां कहीं संभव हो विधिक सहायता स्कीम द्वारा सहायता करके ।

1.6. हस्तक्षेप न करने के युग में यह धारणा की जाती थी कि यदि राज्य न्यायालयों की स्थापना कर देता है तो राज्य ने अपना कर्तव्य पालन कर दिया है । सिविल मुकदमेबाजी के लिए प्रक्रिया में तब विद्यमान अधिकारों का व्यष्टिक दर्शन प्रतिबिंबित होता था। न्यायिक संरक्षण तक पहुंच के अधिकार का आवश्यक रूप से यह अर्थ था कि व्यथित व्यक्ति को मुकदमेबाजी करने या दावे की प्रतिरक्षा औपचारिक अधिकार है । अधिकार को प्रवर्तित कराने में न्यायालय में जाने के लिए असमर्थता राज्य की चिंता का विषय नहीं मानी जाती थी । राज्य अनुयोजन को पर्याप्त रूप से आरंभ करने या अनुयोजन में प्रतिरक्षा करने की सामर्थ्य जैसी समस्याओं के प्रति निष्क्रिय रहता था। ऐसा दृष्टिकोण कल्याणकारी राज्य के दर्शनशास्त्र से असंगत है । इसलिए अनुच्छेद 39क में, मुकदमेबाजी के खर्चे के कम से कम एक संघटक अर्थात् वकील की फीस के बारे में कार्यवाही करने के लिए निःशुल्क विधिक सहायता स्कीमें स्थापित करने के लिए उपबंध है । किन्तु मुकदमेबाजी के खर्चे के कई संघटक हैं और उनमें से प्रत्येक की पर्याप्त रूप से तथा वैज्ञानिक रूप से जांच करनी होगी ताकि ऐसे क्षेत्रों की सीमा स्थिर की जा सके जिनमें मुकदमेबाजी का खर्चा कम करने के लिए पर्याप्त स्थान हो । दृष्टिकोण 19वीं शताब्दी के दृष्टिकोण की तुलना में होना चाहिए ।

'विधिक गरीबी' से राहत देना—बहुत से लोगों की विधि और उसकी संस्थाओं का उपयोग करने में असमर्थता राज्य के लिए चिंता का विषय नहीं थी । हस्तक्षेप न करने की प्रणाली में अन्य वस्तुओं की भांति न्याय उन्हीं लोगों को उपलब्ध था जो उसका खर्चा सहन कर सकते थे । प्रारूपिक न कि प्रभावकारी न्याय-प्ररूपित, न कि प्रभावकारी समता ही सभी कुछ थी जिसकी मांग की जाती थी । इस दृष्टिकोण का त्याग करना होगा ।

1.7. विधि सम्मत शासन पर आधारित संवैधानिक लोकतंत्र को समाज में पैदा होने वाले विवादों के निपटारे के लिए किसी निकाय की व्यवस्था करनी चाहिए । विवाद व्यक्तिगत प्रकृति के हो सकते हैं या विवाद समूहों के बीच हितों में विरोध में से पैदा हो सकते हैं । प्रत्येक स्थिति में विवादों के निपटारे के लिए

आसानी से सुगम मंच होना चाहिए । दहकते हुए शाश्वत विवाद समाज के विकास और वृध्दि में बाधा डालेंगे । आसानी से सुगम किसी मंच द्वारा विवादों के शीघ्र निपटारे से समाज के विकास और वृध्दि में सहायता मिलेगी ।'न्यायालय व्यक्तियों और समूहों के बीच विवादों के प्ररूपिक निपटारे के लिए संस्थाएं हैं । यह मंच प्रभावकारी, उपयोगी, दक्ष और कार्योन्मुख होने के लिए न्याय तक पहुंच के लिए निम्नतम श्रेणी के व्यक्तियों को साधनों की चिंता किए बिना आसानी से सुगम होना चाहिए । मंच विवादों का शीघ्र निपटारा करने में समर्थ होना चाहिए ताकि विवाद समाज में दहकते न रहें और वादी अपना समय निरर्थक मुकदमेबाजी करने के स्थान पर किसी अधिक उत्पादक और सृजनकारी प्रयास में लगा सकें । इसलिए, न्याय प्रणाली नाम की संस्था आसानी से सुगम, कम से कम प्ररूपिक, कम खर्चीली और युक्तियुक्त रूप से कम समय में विवादों का निपटारा करने के लिए तैयार हो । न्यायिक सुधारों की तलाश में विधि आयोग ने ऐसे मंच की व्यवस्था के लिए विचार किया है जो युक्तियुक्त समय के भीतर मामलों का शीघ्र निपटारा कर सके । वर्तमान रिपोर्ट इस मंच तक पहुंच में आर्थिक बाधाओं को दूर करने के संबंध में है ।

1.8. प्रसंगवश रिपोर्ट विधि और न्याय मंत्रालय के न्याय विभाग से प्राप्त निर्देश के संबंध में भी है । ऐसा प्रतीत होता है कि जून, 1982 में हुए राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के विधिमंत्रियों के सम्मेलन ने न्यायालय फीस के सुव्यवस्थीकरण के प्रश्न की जांच करने के लिए एक समिति गठित की । इस समिति ने न्यायालय फीस के सुव्यवस्थीकरण पर एक रिपोर्ट तैयार की । यह रिपोर्ट 31 अगस्त और 1 सितम्बर, 1985 को नई दिल्ली में हुए मुख्य न्यायमूर्तियों, मुख्य मंत्रियों और विधि मंत्रियों के संयुक्त सम्मेलन में 'न्यायालय फीस का उत्सादन' पर कार्यक्रम मद के एक उपाबंध के रूप में रखी गई । यह कहा जाता है कि समय की कमी के कारण, इस विषय पर सम्मेलन में वाद-विवाद नहीं हुआ था । जैसे पहले कहा गया है न्याय प्रणाली का अध्ययन करने और उसमें सुधार की सिफारिश करने के लिए जो आयोग स्थापित किया जाना था उसके निर्देश निबंधनों में एक निबंधन "वादियों पर भार कम करने की दृष्टि से मुकदमेबाजी का खर्चा" था । बाद में भारत सरकार ने न्याय प्रशासन में सुधारों का अध्ययन करने और उसके बारे में सिफारिश करने का कार्य वर्तमान विधि आयोग को सौंपने का विनिश्चय किया । परिणामस्वरूप भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्री ने विधि मंत्रियों की समिति की 'न्यायालय फीस का सुव्यवस्थीकरण' पर रिपोर्ट विधि आयोग को अध्ययन और सिफारिशों के लिए निर्देशित करने का विनिश्चय किया । यह रिपोर्ट, विधि और न्याय मंत्रालय के अपर सचिव के 28/29 अप्रैल, 1986 के अर्धशासकीय पत्र सं० 25/4/80 न्याय में अधिकथित निर्देश को भी निपटा देगी ।

अध्याय 2

मुकदमेबाजी के खर्चे के संघटक

2.1. उन क्षेत्रों को, जिनमें वादियों द्वारा मुकदमेबाजी आरंभ करने या अभियोजन करने या उसमें प्रतिरक्षा करने में व्यय उपगत किया जाता है, अभिनिश्चित करने से पूर्व उन मोटे शीर्षकों की ओर ध्यान देना ठीक होगा जिनके अधीन वादियों को मुकदमेबाजी में अभियोजन करने और प्रतिरक्षा करने में व्यय सहन करना पड़ता है । मोटे तौर पर उन्हें निम्नलिखित समूहों में रखा जा सकता है :—

(1) अधिवक्ता फीस, जिसके अंतर्गत सूचना की, जहां कहीं आवश्यक है, तामील की फीस है,

(2) न्यायालय फीस और आदेशिका फीस,

(3) वादियों और साक्षियों का यात्रा व्यय, आदि

(4) दस्तावेजों की प्रतियां अभिप्राप्त करने के लिए खर्च, टाइप और अन्य प्रकीर्ण व्यय,

(5) स्थगनों के कारण खर्च, और

(6) असफल पक्षकार द्वारा सफल पक्षकार को देय खर्चे ।

2.2. उन क्षेत्रों का पता चलाने के लिए, जहां वादियों द्वारा सहन किए गए खर्च को या तो समाप्त किया जा सकता है या प्रचुर मात्रा में कम किया जा सकता है, प्रत्येक शीर्षक का पृथक विश्लेषण किया जाए। विधि आयोग का कार्य सभी वादियों के संबंध में नहीं है । इसकी सिफारिशें उन वादियों के लिए सुसंगत हैं जो मुकदमेबाजी का वर्तमान खर्च सहन नहीं कर सकते और जो अनुच्छेद 39क के शब्दों में न्याय प्राप्त करना त्याग देने के लिए विवश हो जाएं, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक बाधा के कारण न्याय का वंचन हो जाए । मुकदमेबाजी के खर्च के अत्यधिक भार की जांच करते समय विधि आयोग ने वादियों के इस पार्श्वस्थ वर्ग पर अपना ध्यान केंद्रित किया है । विधि आयोग को ज्ञात है कि वादियों का एक ऐसा वर्ग है जिसके लिए मुकदमेबाजी चलाने में खर्च की मात्रा बिल्कुल सुसंगत कारण नहीं है । तथ्यत: जब विरोधी आर्थिक रूप से निर्धन वर्ग का है तब धनी विरोधी मुकदमेबाजी के खर्च का विचार किए बिना निर्दयतापूर्ण ढंग से या तो निर्धन विरोधी को थका देने के लिए या उस पर अनुचित और अन्यायसंगत समझौता थोपने के लिए मुकदमेबाजी करेगा । समुदाय के निर्धन भाग के ऐसे वादियों के लिए ही, जिन्हें आर्थिक रूप से असुविधाग्रस्त वादियों का वर्ग भी कहा जाता है, जिनके फायदे के लिए कानूनी और कार्यपालक आदेशों द्वारा अधिकार सृजित किए गए हैं या विशेषाधिकार और रियायतें प्रदान की गई हैं किंतु जिन्हें उनसे वंचित किया जाता है और वे आर्थिक बाधा के कारण न्याय प्रणाली के माध्यम से उनका प्रवर्तन कराने में असमर्थ हैं विधि आयोग का संबंध है । जो धनी हैं और मुकदमेबाजी पर खर्च करना विलासता समझते हैं विधि आयोग उनके बारे में चिंतित नहीं है । इस रिपोर्ट को हमारे समाज के निर्धन भाग से वादियों को, जिन्हें जनता का आर्थिक रूप से असुविधाग्रस्त वर्ग कहा जाता है, ध्यान में रखकर समझा जाना चहिए और उसकी सराहना की जानी चाहिए ।

अधिवक्ता फीस

2.3. अधिवक्ता फीस को मुकदमेबाजी के खर्च के संघटक के रूप में प्रथम स्थान देने में विधि आयोग इस तथ्य से प्रभावित हुआ है कि विधि वृत्ति के ख्यातिप्राप्त सदस्य अपने द्वारा दी गई सेवाओं के लिए इतनी फीस लेते हैं जो तुलनात्मक आधार पर किसी अन्य वृत्ति में उपलब्ध नहीं है । विधिज्ञ संगम के गलियारे में स्वतंत्र रूप से कानाफूसी होती है और पहचान दिए बिना विधि आयोग को जानकारी दी गई कि उच्चतम न्यायालय विधिक बंधुता के शीर्षस्थ सदस्य साढ़े चार घंटे के दिन के लिए कई बार 1,00,000 रुपए प्रति दिन की दर से लेते हैं । ग्रहण के लिए रखे गए मामले में उपस्थित होने के लिए 5,000 रुपए से 15,000 रुपए की फीस एक साधारण बात है, और बाद के शीर्षस्थ सदस्यों के ज्येष्ठ अधिवक्ताओं के बारे में ज्ञात हुआ है कि वे प्रति दिन औसतन 5 से 10 ग्रहण मामलों में उपस्थित होते हैं । और इस फीस में, चाहे प्रति दिन अंतिम सुनवाई या प्रतिग्रहण मामला हो, परामर्श फीस नहीं है । निम्नतम फीस लिखित राय देने के लिए प्रति राय 5,000 रुपए से लेकर 5,000 रुपए प्रति घंटा तक होती है । साधारणतया बड़े औद्योगिक और

वाणिज्यिक समुत्थान और निगम तथा कंपनियां इस मापमान पर फीस देती रही हैं और देने की इच्छुक हैं । बात इस स्तर तक पहुंचती हैं जहां प्रतियोगिता बहुत अधिक है और प्रभार निम्नतम हैं ।

2.4. उच्चतर स्तर में संदाय को आयकर अधिनियम में एक अनोखे उपबंध को और प्रोत्साहन मिलता है । अधिनियम की धारा 37(1) में उपबंध है कि कारबार या वृत्ति के प्रयोजनों के लिए संपूर्णत: या अनन्यत: उपगत या किया गया कोई व्यय (जो धारा 30 से 36 में प्रकृति का और पूंजीगत व्यय की प्रकृति का या सोसायटी का व्यक्तिगत व्यय नहीं है) "कारबार या वृत्ति के फायदे और अभिलाभ" शीर्ष के अधीन प्रभार्य आय की संगणना करने में अनुज्ञात किया जाएगा । यह उपबंध निर्वचन के लिए कई बार प्रिवि कौंसिल, उच्चतम न्यायालय, विभिन्न उच्च न्यायालयों और आयकर अपील अधिकरण के समक्ष आया है और मुकदमेबाजी पर व्यय कारबार या वृत्ति के फायदे और अभिलाभ की "संगणना करने में अनुज्ञेय कटौती" शीर्षक में रखा गया है । मामलों की श्रृंखला इतनी बड़ी है कि उसका यहां वर्णन नहीं किया जा सकता किंतु तुरंत संगणक उपलब्ध है[1] । व्यवहारिक रूप से निर्धारिती के कारबार या वृत्ति के संबंध में प्रत्येक प्रकार की मुकदमेबाजी को छूट का फायदा बिना किसी अधिकतम सीमा के मिला है । इस उपबंध से वकीलों की फीस उन मामलों में जहां निगम/कंपनियां मुकदमेबाजी के पक्षकार हैं बढ़ गई हैं और यह निगमों/कंपनियों के लिए उपहार बांटने का ढंग बन गया है और उपहार का उपभोग कराधेय लाभ को कम करके तथा मुकदमेबाजी के खर्च को बढ़ाकर राज्य के खर्च पर किया जाता है । एक धारा 80फफ थी जिसे 1985 के वित्त अधिनियम द्वारा 1-4-1986 से हटा दिया गया है जिसके अधीन 5,000 रुपए की अधिकतम सीमा तक अधिनियम के अधीन मुकदमेबाजी पर उपगत व्यय की कटौती अनुज्ञात थी । निरर्थक शब्दों को छोड़कर उपबंध का अर्थ यह है कि भले ही निर्धारिती असफल हो वह कर प्राधिकारियों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय तक मुकदमेबाजी राज्य के खर्च पर कर सकता है, अधिकतम सीमा के अधीन व्यय निर्धारिती की कुल आय की संगणना करने में कटौती योग्य है । राज्य के खर्च पर मुकदमेबाजी करने वाले ऐसे वादियों के कारण न्यायालयों में वाद भरे पड़े हैं । बड़ी फीस देने की उनकी समर्थता से विधिक सेवाओं के बाजार तथा विधिक वृत्ति की संस्कृति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और अन्य व्यक्ति जो उच्च दरों पर फीसें नहीं दे सकते पर्यावरण से विवश होकर उनका अनुसरण करते हैं और इस प्रयोग में नुकसान उठाते हैं । इसलिए मुकदमेबाजी के खर्च के प्रश्न की जांच वादियों के निर्धन वर्ग की दृष्टि से ही की जाए, जो इस प्रकार दोहरी जोखिम उठाते हैं कि साधनों के अभाव में मुकदमेबाजी आरंभ करके वे अपने अधिकार प्रवर्तित नहीं करा सकते और इस प्रयोग में और अन्याय भोगते हैं अर्थात् अधिकारों, विशेषाधिकारों और रियायतों से वंचन ।

2.5. सादा किस्म की छोटी-मोटी मुकदमेबाजी ग्रामीण क्षेत्रों से आरंभ होती है जिनमें अधिकतर ग्रामीण निर्धन वर्ग के व्यक्ति निवास करते हैं । उनके लिए, न्यायालय फीस से अधिक, अधिवक्ता फीस/वकील प्रभार जो अग्रिम रूप में देने होते हैं, न्याय तक पहुंच में अटूट बाधा खड़ी करते हैं । वादियों के इस वर्ग के लिए "वकील प्रभार" शीर्ष के अधीन मुकदमेबाजी के खर्च को कम करने के लिए दो-धारी अभियान होना चाहिए ।

(1) राज्य को निम्नतम और उच्चतम सीमा विहित करनी चाहिए जिसके भीतर वकील फीस प्रभारित की जा सकती है, और

(2) विधिक सहायता स्कीमें जो राज्य के खर्च पर विधिक सहायता की उपलब्धता सुनिश्चित करें,

दोनों दृष्टिकोणों की पृथक्-पृथक् परीक्षा की जाए ।

2.6. अधिवक्ता अधिनियम, 1961 संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में प्रविष्टि 26 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिनियमित किया गया है । अधिनियम इस प्रकार से एक एकाधिकार का उपबंध करता है जैसा धारा 30 में उपबंधित है कि केवल वही व्यक्ति जिनके नाम राज्य की विधिज्ञ परिषद् द्वारा अनुरक्षित राज्य अधिवक्ता नामावली में नामावलीगत हैं, उन संपूर्ण राज्यक्षेत्रों में, जिन पर अधिनियम का विस्तार है, साधिकार विधि व्यवसाय करने के हकदार होंगे । निस्संदेह धारा 32 न्यायालय को यह शक्ति प्रदत्त करती है कि वह अधिनियम के अधीन अधिवक्ता के रूप में नामावलीगत न किए गए किसी व्यक्ति को किसी विशेष मामले में अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए अनुज्ञा दे । ये दोनों धाराएं अध्याय 4 में हैं जो ऐसा प्रतीत होता है कि अभी प्रवर्तित नहीं हुआ है । यदि अधिनियम इस प्रकार एकाधिकार प्रदान करता है, क्योंकि प्रकृति से एकाधिकार में अपनी एकाधिकारक प्रकृति के दुरूपयोग करने की अंतर्निहित प्रवृत्ति होती है, राज्य को एकाधिकार पर विनियामक नियंत्रण रखना चाहिए और ऐसे विनियामक नियंत्रण

का विस्तार वकील फीस के मामले में निम्नतम और अधिकतम सीमा विहित करने तक हो सकता है । यदि संसद् के अधिनियम द्वारा वृत्ति को एकाधिकार प्राप्त है तो निर्विवाद रूप से संसद् को एकाधिकारक वृत्ति के सदस्यों के आचरण को विनियमित करने की शक्ति होगी और इस शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद् वकीलों द्वारा प्रभार्य फीसों की बाबत निम्नतम और अधिकतम सीमा विहित कर सकती है । आजकल कोई सीमा है ही नहीं । कल्याणकारी राज्य में, अपने समाज के निर्धन अनुभागों के प्रति न्यास के निर्वहन में राज्य को उन्हें अत्यंत बुद्धिमान एकाधिकारक वृत्ति से संरक्षण देना चाहिए । और अब जब कि वकीलों के विधिक प्रभार या फीस बहुत बढ़ गई है समय आ गया है कि राज्य हस्तक्षेप करे और निम्नतम और उच्चतम सीमा विहित करके वृत्ति को विनियमित करे । वकील को यह छूट होनी चाहिए कि वह सीमा के भीतर रहते हुए अपनी फीस बातचीत से तय कर सके । किंतु यदि वादी को उस विधिज्ञ संगम द्वारा, जिसका कि वकील सदस्य है, अनुरक्षित लेखा में अधिकतम सीमा की फीस जमा करानी है तो वकील का यह कर्तव्य होगा कि वह फीस के बारे में किसी अधिक बातचीत के बिना वादी के लिए उपस्थित हो । वह कार्य लेने से तब इन्कार कर सकेगा जब हित का प्रतिविरोध हो या उसके पास कार्य बहुत अधिक हो । वकील अपनी वृत्ति का उत्तम वृत्ति के रूप में वर्णन करते हैं । उत्तमता के लक्षण के रूप में इस त्याग की आशा की जाती है ।

2.7. राज्य को क्यों विनियामक उपाय प्रवर्तित करना चाहिए, उसके लिए एक अतिरिक्त कारण है । हाल ही में विधि और न्याय मंत्रालय के विधि कार्य विभाग के संकल्प सं० एफ 8(14)/82/आई० सी० तारीख 4 जुलाई, 1985 द्वारा उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति बहिरूलइसलाम की अध्यक्षता में विधिक वृत्ति के सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा उपायों का उपबंध करने के लिए सिफारिश करने के लिए एक समिति स्थापित की थी । समिति प्रतिनिधिक स्वरूप की थी क्योंकि इसमें भारत के अटर्नी जनरल, भारत की विधिज्ञ परिषद् के अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय के एक ज्येष्ठ अधिवक्ता, दिल्ली विधिज्ञ परिषद् के अध्यक्ष और एक पत्रकार के अतिरिक्त राज्य सभा के चार सदस्य और लोक सभा के चार सदस्य थे । समिति से यह अपेक्षा की गई थी कि वह विधिक वृत्ति के सदस्यों को दी जाने वाली सामाजिक सुरक्षा के उपायों के संबंध में सभी पहलुओं का गहन अध्ययन करे और विहित अवधि के भीतर अपनी सिफारिशों सहित रिपोर्ट प्रस्तुत करे । समिति ने एक प्रश्नावली जारी की जिसके अतिविस्तृत उत्तर प्राप्त हुए । आंतरिक विचार-विमर्श के पश्चात् समिति ने कनिष्ठ अधिवक्ताओं को जिन्होंने 35 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, नामावलीगत होने की तारीख से पांच वर्ष के लिए 500 रुपए की वित्तीय सहायता का उपबंध करने की सिफारिश की । अनुसूचित जाति और जनजाति तथा महिला अधिवक्ताओं के लिए विशेष उपबंध की सिफारिश की गई । समिति ने अपनी रिपोर्ट के साथ उपाबद्ध एक प्रारूप विधेयक भी प्रस्तुत किया । वित्तपोषण कार्यक्रम प्रारूप विधेयक से साक्षित है । इसमें सदस्यता फीस के उद्ग्रहण और प्रत्येक वकालतनामे पर जो कोई वकील किसी मुकदमे में फाइल करता है इतने मूल्य के स्टांप शुल्क के उद्ग्रहण का भी उपबंध है जो विहित किया जाए । ऐसे स्टांपों के विक्रय से प्राप्त धन निधि का भाग होगा । वास्तव में, विधिक वृत्ति के सदस्यों को स्टांप शुल्क के रूप में कर के उद्ग्रहण द्वारा वित्तीय सहायता का उपबंध किया जाना है । यदि विधिक वृत्ति के सदस्य निधि जुटाने के लिए जो अनन्यत: विधिक वृत्ति के सदस्यों के फायदे के लिए उपयोग में लाई जाएगी, सरकार से अपनी कराधान शक्ति का प्रयोग करने की अपेक्षा कर सकते हैं तो राज्य स्वयंमेव ही फीसों के प्रभारण के मामले में निम्नतम और उच्चतम सीमा का उपबंध करने वाले विनियामक उपाय प्रवर्तित कर सकता है । यदि यह सिफारिश कार्यान्वित की जाती है, वकीलों के प्रभार प्रचुर मात्रा में कम हो जाएंगे और वृत्ति के विभिन्न सदस्यों के बीच विधिक कार्य के साम्यापूर्ण आबंटन और वृत्ति के कुछ सदस्यों के हाथों मे विधिक कार्य के सकेंद्रण को जो एक बहुत बड़ी संख्या के लिए अहितकर है, कम करने का वांछित प्रभाव होगा । ये दोनों उद्देश्य वकील के प्रभारों के मामले में निम्नतम और अधिकतम सीमा विहित करके आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं और यदि वादी संदाय करने को रजामंद है तो वह संविधान के अनुच्छेद 22 के अर्थ के अंतर्गत अपने द्वारा वांछित वकील की सेवाओं का हकदार है ।

2.8. वहां भी जहां वकील के प्रभारों के मामले में निम्नतम और अधिकतम सीमाएं विहित की जाती हैं और प्रवर्तित की जाती है हमारे जैसे निर्धन समाज में अपनी पात्रता की तलाश में भावी वादियों का एक बड़ा भाग फिर भी ऐसा होगा जो विहित प्रभारों का भी संदाय नहीं कर सकेगा । उनके फायदे के लिए अनुच्छेद 39क का उपबंध पूर्ण रूप से प्रवर्तनशील करना होगा । अनुच्छेद 39क राज्य के लिए यह कर्तव्य विहित करता है कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से

नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करे । राज्य को संविधान के अनुच्छेद 39क द्वारा आदेशाधीन कर्तव्य का ज्ञान है । यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए समाज के दुर्बल वर्गों के लिए नि:शुल्क और दक्ष विधिक सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए अनुच्छेद 39क के आदेश को कार्यकारी स्कीम का रूप देने की दृष्टि से, संसद् ने विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का अधिनियम सं० 39) अधिनियमित किया है जिसे 11 अक्तूबर, 1987 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई है । अधिनियम को कानून का रूप लिए लगभग आठ मास बीत चुके हैं किंतु दुर्भाग्य से यह प्रवर्तन में नहीं लाया गया है । विलंब के कारण बताना दुष्कर है । किंतु राज्य और संबंधित शक्तियों के पक्ष में यह कहा जाना चाहिए कि एक कार्यपालक आदेश के अधीन विधिक सहायता स्कीम इस समय चलाई जा रही है । यह स्कीम ढांचा मात्र है । स्कीम को सर्वव्यापी होना है जिससे भारत के किसी भी भाग में कोई व्यक्ति जिसने अपनी पात्रताओं से वंचित किए जाने या अपने अधिकारों से वंचित किए जाने का अन्याय भोगा है अपने आर्थिक साधनों की थोड़ी सी भी चिंता किए बिना अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए या अपनी पात्रताएं उपाप्त करने के लिए विधिक कार्रवाई प्रारंभ करने में समर्थ हो । अधिनियम की धारा 3 के अधीन स्थापित किए जाने वाला राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण इस कानूनी बाध्यता के अधीन है कि वह अधिनियम के उपबंधों के अधीन विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए नीति और सिद्धांत अधिकथित करे, अधिनियम के उपबंधों के अधीन विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए नीति और सिद्धांत अधिकथित करे, अधिनियम के उपबंधों के अधीन विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के प्रयोजन के लिए अत्यंत प्रभावी और मितव्ययी स्कीमें बनाए, अपने व्ययनाधीन निधियों का उपयोग करे और राज्य प्राधिकारियों तथा जिला प्राधिकारियों को निधियों का समुचित आबंटन करे, और उपभोक्ता संरक्षण, पर्यावरण संबंधी संरक्षण या समाज के दुर्बल वर्गों के लिए विशेष चिंता के किसी अन्य मामले के संबंध में सामाजिक न्याय मुकदमेबाज़ी के रूप में आवश्यक कार्यवाही करे और इस प्रयोजन के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं को विधिक कौशल में प्रशिक्षण दे । जब स्कीम प्रवर्तनशील की जाएगी तब निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी अपनी पात्रताओं का अर्जन करने और अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए साधन प्राप्त करने की चिंता के बिना विधिक सहायता प्राप्त करने में समर्थ होगा । तथ्यत: वादियों के निर्धन वर्ग के सदस्यों द्वारा विधिक सहायता की खोज करना अपने आप में एक बहुत बड़ी बात है । विधि आयोग ने, इस तथ्य की जानकारी रखते हुए कि निर्धन ग्रामीण व्यक्तियों के लिए उचित प्राधिकारियों से संपर्क करके विधिक सहायता उपाप्त करना कठिन है, स्कीम को, चाहे वह कुछ भी हो, प्रवर्तनीय करने के लिए एक और कदम उठाया है ।

2.9 जनता के आर्थिक और सामाजिक रूप से असुविधाग्रस्त वर्गों के अधिकतम अनुभाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं । विधि आयोग ने उनके फायदे के लिए सहभागी नमूने के न्याय की पहले ही अगस्त 1986 में सिफारिश की है । रिपोर्ट में ऐसा ग्राम न्यायालय स्थापित करने की सिफारिश की गई है जिसमें विधिक रूप से प्रशिक्षित एक न्यायाधीश और दो सामान्य न्यायाधीश होंगे । किसी और बात के अतिरिक्त, ग्राम न्यायालय को इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी है कि लोग न्याय की खोज में उसके पास आएं, किंतु जब कभी किसी विवाद की रिपोर्ट होती है तो वह विवाद के स्थान पर समवेत होगा और उसका निपटारा करेगा । हमारा समाज विरोधी पद्धति के साथ विधि सम्मत शासन पर आधारित है, वाद के निपटारे में सहायता की प्रक्रिया में वकील की उपस्थिति साधारणतया अपरिहार्य समझी जाती है । यदि ग्राम न्यायालय को विवाद के स्थान पर निपटारा करना है तो निर्धन ग्रामीण वर्ग के लोग अपने वकीलों को उस स्थान पर कैसे ला सकेंगे,जहां विवाद उठा है । ऐसी स्थिति से परिचित होते हुए विधि आयोग ने सिफारिश की है कि ऐसे प्रत्येक ग्राम न्यायालय को, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम,1987 के अधीन स्थापित जिला प्राधिकरण दो वकील सौंप देगा जिनकी सेवाएं प्रत्येक पक्ष को वकील की सेवाओं की आवश्यकता की दशा में संदाय किए बिना उपलब्ध होंगी । यदि निर्धन ग्रामीणों को ग्राम न्यायालय के समक्ष अपने विवादों में न्यायालय फीस का संदाय नहीं करना है और संदाय की बाध्यता के बिना उपर्युक्त अधिनियम के अधीन जिला प्राधिकरण द्वारा सौंपे गए वकीलों की सेवाएं उपलब्ध होंगी तो विश्वसनीय रूप से यह कहा जा सकता है कि मुकदमेबाजी के खर्च के दो बड़े संघटक पूर्ण रूप से समाप्त हो जाएंगे और मुकदमेबाजी का खर्च प्रत्यक्ष रूप से इतना कम हो जाएगा जो पूर्ण रूप से सहनयोग्य हो जाएगा ।

न्यायालय फीस और आदेशिका फीस

2.10 तत्समय विधि मंत्री श्री जगन्नाथ कौशल द्वारा न्यायालय फीस के उत्सादन के लिए कोलाहलकारी तर्क की दृष्टि से वादियों द्वारा सहन किए जाने वाले मुकदमेबाजी के खर्चे के संघटक के रूप में

न्यायालय फीस ने पार्श्व चित्र का दृश्यमान रूप धारण कर लिया है । यह एक जटिल विषय है और इसलिए अगले अध्याय में इस पर पृथक् रूप से चर्चा की गई है । आदेशिका फीस के बारे में, साधारण उत्तर, जो विधि आयोग देगा, उत्तरवर्ती अध्याय में अपने निर्माण की दृष्टि से, यह है कि वे लोग जो छूट की सीमा में आते हैं आदेशिका फीस नहीं देंगे और जो न्यायालय फीस देने के दायी हैं उच्च न्यायालयों द्वारा विहित की जाने वाली दर से आदेशिका फीस का संदाय करेंगे ।

वादियों और साक्षियों का यात्रा व्यय, आदि

2.11. वर्तमान स्थिति यह है कि निम्नतम अधिकारिता वाले न्यायालय कार्य की मात्रा पर निर्भर करते हुए साधारणतया तालुका के मुख्यालय या तहसील में स्थित होते हैं । कभी कभी निम्नतम अधिकारिता वाला न्यायालय 2 से 3 तालुकों/तहसीलों पर अधिकारिता सहित स्थापित किया जाता है और ऐसे न्यायालय की अधिकारिता के भीतर किसी क्षेत्र से भी न्याय की तलाश में वादियों को कई बार मुख्यालय में जाना पड़ता है जहां न्यायालय स्थापित किया गया है । केवल वादियों को ही कई बार न्यायालय में नहीं जाना होगा बल्कि जब वाद साक्ष्य अभिलिखित करने के चरण पर पहुंचता है, साक्षियों को ग्राम से न्यायालय और वापस लाना होता है और उनके लिए खानपान का भी उपबंध करना होता है । इस पर बहुत अधिक खर्च होगा । अनुभव से पता चला है कि सुनवाई के प्रक्रम पर आने और साक्षियों को लाने के पश्चात् वाद कई बार स्थगित किया जाता है जिसमें साक्षियों को बार-बार न्यायालय में लाने का दायित्व होता है । केवल इतना ही नहीं साक्षियों की प्रतिपरीक्षा आरंभ होने के पश्चात् भी यह वाद की लगातार सुनवाई करके संपूर्ण नहीं की जाती है और वाद प्रतिपरीक्षा के अधीन साक्षी की इस बाध्यता के साथ स्थगित किया जा सकता है कि वह न्यायालय में इतनी बार उपस्थित होगा जितनी बार न्यायालय उसकी उपस्थिति की आज्ञा करें या ऐसे समय तक जब तक यह अभिलिखित न कर लिया जाए कि परीक्षा पूरी हो गई है । अहमदाबाद न्यायालय में एक कुख्यात मामला है जहां स्थगित प्रतिपरीक्षा एक दशक तक चली । जब तक आदेश 16 के नियम 3 द्वारा यथापेक्षित साक्षी को समन नहीं किया जाता है और उसकी उपस्थिति उपाप्त करने के लिए रकम जमा नहीं की जाती है तो साक्षियों को न्यायालय में लाने में उपगत व्यय निर्धारित खर्चे में सम्मिलित नहीं किया जाएगा । आदेश 16 के नियम 1क द्वारा किसी पक्षकार को साक्षियों की, उनकी उपस्थिति उपाप्त करने के लिए न्यायालय की सहायता लिए बिना, उपस्थित रखने की अनुज्ञा है और यदि उन्हें उपस्थित रखा जाता है जो न्यायालय उनकी परीक्षा करने की बाध्यता के अधीन है जब तक कि यह नहीं कहा जाता कि साक्षी का साक्ष्य असुसंगत है या प्रयोग तंग करने या विलंब करने के लिए है ।[5] और हमारे देश में वादियों में ऐसे मामलों में भी बड़ी संख्या में साक्षी लाने की अनोखी प्रवृत्ति है जहां मौखिक साक्ष्य की बहुत कम या कोई सुसंगति नहीं है और मुकदमेबाजी के खर्च का यह अदृश्य संघटक कई बार कमरतोड़ होता है । इस शीर्ष के अधीन खर्च के कम करने की गुंजाइश है ।

2.12. मौखिक साक्ष्य की वहां सुसंगति होती है जहां पक्षकारों में किसी तथ्य संबंधी स्थिति के बारे में मतभेद है जो दस्तावेजी साक्ष्य से सिद्ध नहीं किया जा सकता, जैसे सुखाचार पर आधारित वाद । क्या कोई विशिष्ट मार्ग अस्तित्व में था और उसका उपयोग किया जाता था, या जल के लिए मार्ग अस्तित्व में था और कानून द्वारा विहित अवधि के लिए उसका उपयोग किया जाता था इसके लिए ऐसे साक्षियों की परीक्षा अपेक्षित होगी जिन्हें, यथास्थिति, मार्ग का या जलमार्ग का पक्का ज्ञान हो । ऐसे मामले भी अज्ञात नहीं हैं जहां प्रत्येक पक्ष द्वारा बहुत बड़ी संख्या में साक्षी बुलाए जाते हैं और उनकी परीक्षा की जाती है । साक्ष्य अधिनियम किसी अमुक तथ्य को साबित करने के लिए साक्षियों की संख्या विहित नहीं करता है फिर भी किसी दस्तावेज के निष्पादन के सबूत के मामले में जिसका अनुप्रमाणित किया जाना विधि द्वारा अपेक्षित है, दस्तावेज को साक्ष्य में प्रस्थापित करने वाले व्यक्ति पर बाध्यता है कि निष्पादन के सबूत के प्रयोजन के लिए वह कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी की परीक्षा कराए[6] । धारा 68 के परन्तुक में किसी विल को साबित करने की प्रस्थापना करने वाले व्यक्ति से यह अपेक्षा की गई है कि उसे साबित करने के लिए वह कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी की परीक्षा कराए । किंतु अन्य सभी मामलों में यदि दस्तावेज भारतीय रजिस्ट्रीकृत अधिनियम के उपबंधों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत है तो धारा 68 की कठोरता इस प्रकार कम हो जाएगी कि ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य में प्रस्थापित करने वाले व्यक्ति से किसी अनुप्रमाणक साक्षी की परीक्षा कराने की अपेक्षा नहीं होगी । इसलिए किसी दिए गए तथ्य को साबित करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में साक्षियों की परीक्षा करने की प्रवृत्ति को दबाने की आवश्यकता है किंतु जब तक ऐसा नहीं किया जाता है तब तक इस शीर्ष के अधीन मुकदमेबाजी के खर्च को कम करने का एक रास्ता है । जहां एक बार साक्षी को बुलाया जाता है वहां

उसकी परीक्षा उसी दिन पूरी कर लेनी चाहिए । ऐसा दो साधारण तरीकों से किया जा सकता है ।

2.13. यदि न्यायालय ने साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए किसी दिन के लिए कुछ संख्या में मामले लगा रखे हैं और न्यायालय सभी साक्षियों का साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए अपने आपको असमर्थ समझता है, तो न्यायालय को एक वकील को यह निदेश देते हुए कि वह उन सभी साक्षियों का, जो न्यायालय में उपस्थित है, साक्ष्य अभिलिखित करे आयुक्त के रूप में नियुक्त करना चाहिए । यह पद्धति मध्य प्रदेश में अधीनस्थ न्यायालयों में चल रही है । इस पद्धति का सर्वथा अनुसरण करना अपेक्षित है । एक बार साक्षी आ गया है और साक्ष्य अभिलिखित कर लिया गया है तो उसे दोबारा नहीं बुलाया जा सकेगा और साक्षी उपाप्त करने पर अतिरिक्त विनिधान बच जाएगा । यह कहना आवश्यक नहीं है कि इसमें वर्णित परिस्थितियों में आयुक्त का खर्चा राज्य सहन करेगा ।

2.14. किंतु विधि आयोग का एक अन्य वैकल्पिक सुझाव है जो उसने इस निमित्त पहले ही दिया है । यदि उसके द्वारा सिफारिश किए गए ग्राम न्यायालय स्थापित किए जाते हैं, तो ऐसे ग्राम न्यायालयों के लिए विवाद के स्थान पर जाना अनिवार्य है जिससे स्वयं हल निकल आता है । ग्रामीण क्षेत्रों से आरंभ होने वाले कई मामलों में जो न्यायालयों तक जाते हैं, विवाद व्यक्तियों, गाड़ियों और ढोरों द्वारा उपयोग किए जाने वाले किसी गृह या खेत को सड़क या मार्ग पर केंद्रित होता है । ये विवाद विदेशी विनिश्चयों के, जो विधि में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हैं तकनीकी नियमों और जटिल सूत्रों की उलझन में पड़ जाते हैं । साधारण विवाद के प्रति यह सभी उलझन भरे और जटिल दृष्टिकोण से बचने के लिए, इस प्रकृति के किसी विवाद की प्राप्ति पर ग्राम न्यायालय, ऐसी तारीख को, जो अग्रिम रूप से अधिसूचित की जाएगी, विवाद के स्थान पर समवेत होगा, साक्षी उसी परिक्षेत्र से होंगे, उनकी संक्षिप्त परीक्षा की जा सकती है और विवाद का निपटारा ग्राम न्यायालय के विनिश्चय के अनुसार किया जा सकता है । इससे साक्षियों के परिवहन और खानपान प्रभारों पर व्यय पूर्णतया समाप्त हो जाएगा । इससे समय और धन दोनों में बचत होगी[7] । नगरीय मुकदमेबाजी की दशा में, समस्या इतनी जटिल नहीं है क्योंकि न्यायालय शहर में हैं और उन्हें बहुत अधिक खर्च किए बिना उपस्थित रखा जा सकता है । इसलिए यदि इसमें दिए गए दो सुझाव कार्यान्वित किए जाते हैं तो मुकदमेबाजी के खर्चे के रूप में साक्षियों के परिवहन और खानपान पर व्यय या तो पूर्णतया समाप्त हो जाएगा या इस स्तर तक कम हो जाएगा कि वह सहन किया जा सके ।

2.15. इस संदर्भ में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 17 की ओर ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए जो न्यायालय को सशक्त करता है कि वह तुच्छ आधारों पर और किसी भी दशा में वकील की सुविधा के आधार पर स्थगन न करे । आदेश 17 के उपबन्ध का कड़ाई से अनुसरण किया जाना चाहिए और इससे इस शीर्ष के अधीन खर्चे में और कटौती होगी ।

दस्तावेजों की प्रतियां अभिप्राप्त करने के लिए खर्च, टाइप और अन्य प्रकीर्ण व्यय

2.16. वे दस्तावेज जो भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबन्धों के अधीन अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरणीय होते हैं, अधिनियम के अधीन स्थापित रजिस्ट्री द्वारा रजिस्टर किए जाते हैं । ऐसे दस्तावेजों की प्रतियां कुछ प्रभारों का संदाय करके अभिप्राप्त की जा सकती हैं । अभी तक उदग्रहण की बुद्धिमत्ता पर गंभीर रूप से आपत्ति नहीं की जा सकेगी क्योंकि रजिस्ट्री किसी भी समय के व्यतीत हो जाने के पश्चात् दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध कराकर लोक सेवा करती है । किंतु प्रति अभिप्राप्त कर लेने के पश्चात् जब दस्तावेज किसी वाद या अन्य कार्यवाही में पेश की जाती है, तो न्यायालय फीस उदग्रहणीय होती है । इसे पूर्णरूप से समाप्त करना चाहिए । कोई फीस एक बिंदु पर होनी चाहिए । एक बार जब उन दस्तावेजों की, जो रजिस्ट्री द्वारा रजिस्टर की गई दर्शित की गई हैं और जिनकी प्रतियां रजिस्ट्री द्वारा दी जाती हैं, प्रतियां अभिप्राप्त करने के लिए फीस का संदाय किया जाता है तो ऐसी दस्तावेज की प्रमाणित प्रति को पेश करने के लिए न्यायालय फीस के और उदग्रहण की आवश्यकता नहीं है । इसलिए ऐसे किसी उदग्रहण को पूर्णतया हटा देना चाहिए ।

स्थगनों के कारण खर्च

2.17. साक्षियों को यात्रा व्यय का संदाय करने में उपगत खर्च के प्रश्न की चर्चा करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है । इसलिए यह कहने के सिवाय कि

आदेश 17 का कड़ाई से अनुसरण किया जाना चाहिए इस विषय को और विस्तृत करने की आवश्यकता नहीं है ।

सफल पक्षकार को असफल पक्षकार द्वारा देय खर्च

2.18. सफल वादी को प्रतिकर देने का यह तरीका बिल्कुल तुच्छ मुकदमेबाजी पर कुछ सीमा तक रोक लगाने का कार्य करेगा । किंतु यह भी सत्य है कि कई बार विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपलब्धता या प्रक्रिया संबंधी किसी त्रुटि के कारण सही दावा भी असफल हो सकता है । उदाहरण के लिए, यदि, किसी लंबित वाद में, प्रतिवादी या जहां एक से अधिक प्रतिवादी हैं उनमें से एक की मृत्यु हो जाती है और उसके वारिसों को विहित समय के भीतर अभिलेख में दर्ज नहीं कराया जाता है तो वाद का उपशमन हो जाता है । ऐसी स्थिति में दावा सही हो सकता है किंतु प्रक्रिया संबंधी असफलता के कारण नामंजूर कर दिया जाता है । ऐसे मामले अज्ञात नहीं है जिनमें उच्चतम न्यायालय तक सफल वादी मामला हार गया जब किसी लंबित अपील में वारिस विहित समय के भीतर अभिलेख पर नहीं लाए गए और न्यायालय ने विलंब को माफ करने के लिए इस आधार पर इंकार कर दिया कि मृतक पक्षकार के वारिसों या विधिक प्रतिनिधियों को विहित समय के भीतर पक्षकार बनाने में असफलता के लिए पर्याप्त हेतुक दर्शित नहीं किया गया है । इस तकनीकी असफलता के कारण जब किसी वादकर्ता को वाद नहीं करने दिया जाता तो भी अन्य पक्षकार को खर्चे अधिनिर्णीत किए जाते हैं । किसी सफल वादी को खर्चे दिलाने से इंकार करना अन्याय पूर्ण प्रतीत होता है । किंतु इससे आयोग के कार्य में रुकावट नहीं आनी चाहिए क्योंकि खर्चे अधिनिर्णीत करते समय यह अभिनिश्चित करना होगा कि क्या अन्य पक्ष ने न्यायालय फीस पर कुछ व्यय किया है और यदि वादी छूट की सीमा के भीतर है तो "न्यायालय फीस" शीर्ष के अधीन कुछ भी अधिनिर्णीत नहीं किया जाएगा । इसी प्रकार यदि विधिक सहायता अभिप्राप्त की गई है तो "वकील प्रभार" शीर्ष के अधीन कुछ भी अधिनिर्णीत नहीं किया जाएगा । शेष व्यय नगण्य होगा । इसलिए खर्चे अधिनिर्णीत करने की पध्दति को वहां के सिवाए जारी रखा जा सकेगा जहां मामला न्यायालय की प्रेरणा पर छोड़ दिया जाना चाहिए जब सफल वादी समाज के धनी अनुभाग से है और असफल पक्षकार समाज के निर्धन अनुभाग से है । ऐसी स्थिति में, धनी सफल पक्षकार को खर्चे अधिनिर्णीत नहीं करने चाहिए । किंतु यदि दूसरी ओर सफल वादी समाज के निर्धन अनुभाग से है तो धनी वादी के विरुद्ध उसे पूरे खर्चे अधिनिर्णीत किए जाने चाहिए । ऐसी स्थिति में न्याय के पक्ष में पलड़ा भारी रखने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 35 के अधीन प्रतिकर स्वरूप खर्चे भी अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं ।

अध्याय 3

मुकदमेबाजी के खर्चे के संघटक के रूप में न्यायालय फीस और उसका सुव्यवस्थीकरण

3.1. राज्य सूची की प्रविष्टि 3 इस प्रकार है—

"उच्च न्यायालय के अधिकारी और सेवक, भाटक और राजस्व न्यायालयों की प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों में ली जाने वाली फीस ।"

"न्यायालय फीस" इस प्रकार राज्य की अधिकारिता के भीतर का विषय है । संविधान का अनुच्छेद 145 संघ सूची की प्रविष्टि 77 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय को राष्ट्रपति के अनुमोदन से न्यायालय की पद्धति और प्रक्रिया के साधारणतया विनियमन के लिए नियम बना सकेगा । नियम बनाने की इस शक्ति के अन्तर्गत अन्य बातों के साथ-साथ' उसमें कार्यवाहियों की बाबत प्रभारित की जाने वाली फीस' के संबंध में नियम बनाने की शक्ति है[1] । राज्य सूची की प्रविष्टि 3 के अधीन इस शक्ति से सज्जित होते हुए अब तक 10 राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल तथा पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र ने न्यायालय फीस पर स्वयं अपनी विधियां अधिनियमित कर ली हैं । आयोग को यह पता चला है कि हरियाणा राज्य ने अपना न्यायालय फीस अधिनियम अधिनियमित कर लिया है ।[2] अन्य राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में समय-समय पर यथासंशोधित केन्द्रीय न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 प्रवृत्त है ।

3.2. न्यायालय फीस सदैव अत्यंत विवादग्रस्त विषय रहा है । अस्पष्टता की एक ओर वे व्यक्ति हैं जो यह प्राख्यान करते हैं कि यह न्याय पर कर है और संवैधानिक लोकतंत्र से असंगत है । अस्पष्टता की दूसरी ओर वे व्यक्ति हैं जो यह प्राख्यान करते हैं कि जहां तक सिविल न्याय के प्रशासन का संबंध है, न्यायालय फीस दी गई सेवा के लिए उद्ग्रहीत फीस है और इसमें तत्प्रतिशत् का सिद्धांत अंतर्निहित है । अस्पष्टता के दोनों ओर अति-प्रतिपादना के रूप में, दोनों में गलती है किन्तु उचित रूप से विश्लेषण करने पर प्रत्येक प्रतिपादना में सत्य का अंश है । दोनों दृष्टिकोणों की संक्षिप्त परीक्षा की जाए ।

3.3. विधि आयोग ने, सिविल न्याय पद्धति में सुधारों की सिफारिश करने का कार्य भारत सरकार द्वारा सौंपा गया, चलन में न्याय पद्धति की विस्तृत जांच, न्याय प्रशासन में, उसके कुछ कुरूप और अवांछनीय लक्षणों को डटाने की दृष्टि से, सुधारों की सिफारिश करने के लिए की । मुकदमेबाजी का बढ़ता हुआ खर्चा न्याय पद्धति का एक अवांछनीय लक्षण समझा गया क्योंकि यह न्याय तक पहुंच में एक बाधा बन गया । इस स्थिति का विश्लेषण किया गया । न्यायालय फीस को मुकदमेबाजी के खर्चे का अत्यंत महत्वपूर्ण संघटक समझा गया । यह प्रश्न कि क्या न्यायालय फीस का उद्ग्रहण न्यायपूर्ण है या नहीं प्रथम विधि आयोग के ध्यान का विषय रहा । "जहां तक हमें ज्ञात है, भारत ही शासन के आधुनिक तंत्र के अधीन ऐसा देश है जो उस व्यक्ति को, जो अपनी संपत्ति से वंचित किया गया है या जिसके विधिक अधिकारों का अतिलंघन किया गया है उस उपचार पर जो वह चाहता है, कर अधिरोपित करके, प्रतितोष प्राप्त करने से भयोपरत करता है । हमारे राज्य शारीरिक (मानसिक) नि:शक्तता से ग्रस्त व्यक्तियों को नि:शुल्क उपचार देने के लिए अस्पतालों की व्यवस्था करते हैं । किंतु यदि किसी व्यक्ति के मूल या अन्य अधिकारों की क्षति होती है, तो हम एक भारी फीस न देने पर न्यायालय तक उसकी पहुंच वर्जित कर देते हैं । जो फीस हम प्रभारित करते हैं इतनी अत्यधिक है कि अपने विधिक अधिकार को प्रवर्तित कराने का इच्छुक कोई सिविल वादी सिविल न्याय के प्रशासन का संपूर्ण खर्चा की नहीं देता बल्कि अपराधियों को, उन अपराधों के लिए जिससे सिविल वादी का कोई संबंध नहीं है, अभियोजित और दंडित करने के लिए राज्य द्वारा उपगत खर्चे का भी संदाय करता है ।"[3] न्यायालय फीस के प्रति दृष्टिकोण का 1958 में इस प्रकार उपसंहार किया गया ।

3.4. ब्रिटिश शासन के भारत में आने तक न्यायालय फीस का उद्ग्रहण अज्ञात था । यह ब्रिटिश शासन ही था जो अपने साथ ऐसे विनियम लाया जिन्होंने न्यायालय फीस अधिरोपित की ।

न्यायालय फीस अठारहवीं शताब्दी में 1782 के मद्रास विनियम 3, 1795 के बंगाल विनियम 38 और 1802 के मुम्बई विनियम द्वारा उद्गृहीत की गई प्रतीत होती है । तब से यह न्याय प्रशासन का नियमित लक्षण बन गया है ।

3.5. बंगाल विनियम न्यायालय फीस के अधिरोपण को इस आधार पर न्यायसंगत ठहराता था कि इससे तुच्छ मुकदमों का संस्थित किया जाना रुक जाएगा । इसमें यह कथन था कि "वादों और याचिकाओं के संस्थापन और विचारण पर इन फीसों का अधिरोपण न्यायसंगत दावों का लाना रोके बिना इसके दुरुपयोग पर रोक लगाने का उत्तम ढंग समझा गया है" । मकाले ने इस कथन को प्रतिरक्षा के अयोग्य समझा और इसका ऐसे वर्णन किया "अति प्रसिद्ध अर्थहीन उद्देशिका जो कभी तैयार की गई" । 25 जून, 1835 के अपने टिप्पण में मकाले ने लिखा "यदि जो न्यायालय प्रशासन करते हैं वह अन्याय है, तो ये कर प्रतिरक्षा योग्य हैं या बहुत कम होने के कारण आक्षेपणीय हैं । उन्हें इतना बढ़ा दिया जाना चाहिए जब तक ये प्रतिषेधात्मक न हो जाएं या न्यायालयों को बंद कर दिया जाना चाहिए और हमारे न्यायिक स्थापन का पूर्ण व्यय राज्य को वहन चाहिए । किंतु यदि जिसका न्यायालय प्रशासन करते हैं वह न्याय है तो क्या न्याय ऐसी वस्तु है जिसके जनता को दिए जाने की राज्य को इर्ष्या करनी चाहिए"[4]?

3.6. मकाले की केवियट के अधीन रहते हुए न्यायालय फीस तुच्छ मुकदमेबाजी पर रोक के रूप में सीमांकित थी । फिर भी, राज्यों ने व्यवहारिक रूप से इसे राजस्व का एक स्रोत समझा है[5]। सदैव भयकारी साधन होने के कारण न्यायालय फीस को बढ़ा दिया गया और साथ-साथ वृद्धिकारक पुनरीक्षण के लिए औचित्य के रूप में न्याय प्रशासन के सदैव बढ़ते हुए खर्च की ओर भी संकेत किया । इसलिए, विधि आयोग यह संप्रेक्षण करने के लिए विवश हो गया, "फीस, फीस नहीं रही, यह एक भारी कर है"[6]। इस निष्कर्ष तक पहुंचने में विधि आयोग सहसा चुनी गई कुछ डिक्रियों के विश्लेषण से निकाले गए तथ्य से प्रभावित हुआ कि न्यायालय फीस निर्धारित खर्चे का उच्चतम संघटक है । आयोग यह संप्रेक्षण करने के पश्चात् कि[6] न्याय प्रशासन के लिए तंत्र की व्यवस्था करना राज्य का सर्वप्रथम कर्तव्य है और सिद्धांततः न्यायालयों में वादकर्ताओं से फीस प्रभारित करना राज्य के लिए उचित नहीं है, यह सिफारिश करने को अग्रसर हुआ कि "यदि न्यायालय फीस प्रभारित भी की जाती है तो उससे प्राप्त राजस्व सिविल न्याय प्रशासन के खर्चे से अधिक नहीं होना चाहिए क्योंकि न्याय प्रशासन से राज्य द्वारा लाभ उठाना न्यायपूर्ण नहीं है"[7]।

3.7. कराधान जांच आयोग वर्ष 1954 के लिए आंकड़े एकत्र करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भाग क राज्यों में न्याय प्रशासन पर व्यय न्यायालय फीस से प्राप्तियों से अधिक है और भाग ख राज्यों में भी स्थिति वैसी ही है । इसलिए जबकि भाग क और भाग ख राज्यों में 1954-55 में न्यायलय फीस से प्राप्तियां न्याय प्रशासन पर व्यय को चुकाने के लिए पर्याप्त नहीं थी,[8] तब भी 1958 में विधि आयोग ने पाया कि न्याय प्रशासन पर व्यय की तुलना में न्यायालय फीस से प्राप्तियां अधिक थीं और इसलिए उनका स्वरूप कर का न कि फीस का हो जाता है ।

3.8. विधि और न्याय मंत्रालय से संलग्न परामर्श समिति ने जून 1980 की अपनी बैठक में विचारण न्यायालयों में न्यायालय फीस के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक उपसमिति का गठन किया । उस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट में न्यायालय फीस को समाप्त करने की सिफारिश की । उपसमिति की सिफारिश राज्यों को उस पर विचार करने और उस संबंध में कार्यवाही करने के लिए भेजी गई । कुछ राज्यों ने न्यायालय फीस समाप्त करने का विरोध किया । कुछ राज्य सरकारों ने न्यायालय फीस की समाप्ति का विरोध तो नहीं किया किंतु यह इच्छा प्रकट की कि राजस्व की हानि के कम से कम 50 प्रतिशत की सीमा तक राज्य सरकारों की भारत सरकार द्वारा प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए ।

3.9. यह प्रयोगविधि मंत्रियों के सम्मेलन द्वारा गठित उप समिति द्वारा फिर किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट 1984 में दी । इस उप समिति ने न्यायालय फीस की समाप्ति की सिफारिश नहीं की किंतु न्यायालय फीस की संरचना में, मोटे तौर पर मूल्यानुसार न्यायालय फीस में कमी, कुछ प्रवर्गों के वादियों और कुछ प्रवर्गों के मामलों को न्यायालय फीस के संदाय/उद्ग्रहण से छूट और कुछ परिस्थितियों में न्यायालय फीस के प्रतिदाय के द्वारा सुव्यवस्थीकरण की सिफारिश की । उस समिति की एक अन्य महत्वपूर्ण सिफारिश यह है कि प्रथम तथा द्वितीय अपीलों पर न्यायालय फीस मूल वाद पर उद्ग्रहणीय फीस का 50 प्रतिशत होनी चाहिए, भले ही अपील मूल वाद में वादी या प्रतिवादी द्वारा की गई हो । समिति ने यह और सिफारिश की कि ऐसे वादियों को जिनकी वार्षिक आय

6,000 रुपए तक है, न्यायालय फीस के संदाय से छूट दी जाए । यदि कोई राज्य 6,000 रुपए प्रतिवर्ष से अधिक आय वाले वादियों को छूट देने की स्थिति में है तो वह उसके सर्वोपरि प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए ऐसा कर सकता है । जहां तक आय के सबूत का संबंध है वादी का शपथपत्र स्वीकार किया जाए । इसने यह भी सिफारिश की कि यदि कोई राज्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को, एक वर्ग के रूप में छूट देना साध्य समझता है तो वह ऐसा कर सकता है । समिति की सिफारिश के अनुसार स्त्रियों को विवाह संबंधी मामलों में न्यायालय फीस के संदाय से छूट दी जाए और भरणपोषण के लिए वादों पर न्यायालय फीस के संदाय से बालकों को छूट दी जाए । संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाओं पर न्यायालय फीस की दर के प्रति निर्देश करते हुए, उसने सिफारिश की कि बंदी प्रत्यक्षीकरण से भिन्न मूल अधिकार के अतिक्रमण की शिकायत करने वाली रिट याचिका पर उद्ग्रहणीय फीस 100 रुपए और कर संबंधी मामलों में 500 रुपए तथा प्रकीर्ण मामलों में 250 रुपए होनी चाहिए । उसने स्वयं आदेशिका फीस के उद्ग्रहण में किसी परिवर्तन की सिफारिश नहीं की ।

3.10. क्या न्यायालय फीस का उद्ग्रहण न्याय पर एक कर है ? किए गए रूप में प्रश्न का कोई विनिर्दिष्ट सीधा उत्तर नहीं दिया जा सकता । न्याय प्रशासन के दो बड़े अंग हैं (1) सिविल न्याय, और (2) दांडिक न्याय । दोनों की बाबत राज्य की बाध्यताओं में तात्विक अंतर है ।

3.11. लिखित संविधान सहित विधि सम्मत शासन और निर्विष्ट अधिकारपत्र द्वारा शासित किसी समाज के पास कानून या प्रत्यायोजित विधान, जो ऐसे प्राधिकारियों द्वारा अंगीकार किया गया है जिन्हें ऐसा करने की शक्ति है,नामक विनियामक उपाय होने चाहिए । विनियम या नियामक उपायों के अतिक्रमण को साधारणतया दंडनीय बनाया जाता है । किसी राजनैतिक सोसाइटी के बढ़ने और विकास के लिए आंतरिक शांति और बाह्य आक्रमण से सुरक्षा होनी चाहिए । आंतरिक शांति उचित रूप से प्रवर्तित विधियों द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है और जब उनका अतिक्रमण किया जाए तो दंड के अधिरोपण द्वारा की जा सकती है । यह अवधारित करने के लिए कि क्या विधि का अतिक्रमण किया गया है या कोई उल्लंघन हुआ है एक मंच स्थापित करना होता है जो प्रवर्तन तंत्र द्वारा लगाए गए आरोप का अभिकथित उल्लंघनकर्ता के विरुद्ध, जिसे अपनी प्रतिरक्षा करने की अनुज्ञा होनी चाहिए, अधिनिर्णय करेगा । मंच को यह अधिनिर्णीत और विनिश्चित करना चाहिए कि क्या किसी विधि का वास्तव में उल्लंघन किया गया है या नहीं और यदि उल्लंघन किया गया है तो अपराध की मात्रा अवधारित करनी चाहिए और आनुपातिक दंड अधिरोपित करना चाहिए । मोटे तौर पर और संक्षेप में कहा जाए तो यह दांडिक न्याय का कृत्य है । राज्य को ही आंतरिक शांति सुनिश्चित करनी चाहिए । यह उसके कर्तव्य का एक भाग है कि वह विनियामक उपाय अपनाए और यह भी उसके कर्तव्य का बराबर भाग है कि वह यह अवधारित करने के लिए किसी मंच को स्थापित करे कि क्या किसी विनियामक उपाय का उल्लंघन हुआ है या नहीं और क्या कोई दंड दिया जाना चाहिए या नहीं । अपने प्रभुत्वसंपन्न कृत्यों के भागरूप होते हुए यह राज्य का बाध्यकारी कर्तव्य है । इसको मोटे तौर पर "दांडिक न्याय प्रशासन" में सम्मिलित किया जा सकता है । यह राज्य के प्रभुत्वसंपन्न कृत्यों का साधारण भाग है इसलिए तथा इस कारण भी कि तंत्र वादी को कोई सेवा प्रदान नहीं करता है, कोई फीस उद्गृहीत नहीं की जा सकती । असभ्य ढंग से कहा जाए तो किसी वादी को स्वयं अपने को दंडित करने के लिए न्यायालय की सेवा की आवश्यकता नहीं है । इसलिए दांडिक न्याय प्रशासन राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवा नहीं है बल्कि यह राज्य द्वारा अपने प्रभुत्वसंपन्न कृत्य का पालन है और उसके कर्तव्य के प्रवर्तन में वृद्धि और विकास में सहायक आंतरिक शांति की व्यवस्था करना है ।

3.12. जब सिविल न्याय की बारी आती है तो दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है । सिविल विवादों के अंतर्गत एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच, एक व्यक्ति और व्यक्ति-समूह के बीच, एक ओर एक व्यक्ति समूह और दूसरी ओर एक व्यक्ति समूह के बीच और एक ओर व्यक्तियों या व्यक्ति-समूह और दूसरी ओर राज्य के बीच विवाद आते हैं । मूल अधिकारों पर स्वयं संपूर्ण अध्याय सहित लिखित संविधान और परिसंघ तथा राज्य के बीच शक्तियों के विभाजन से विवाद उत्पन्न होने का उपजाऊ आधार का उपबंध होता है । इन विवादों का निपटारा करना होता है कि क्योंकि निरंतर वैमनस्यपूर्ण विवाद समाज की वृद्धि और विकास के लिए सहायक नहीं है । किंतु जब विवाद दो व्यक्तियों जैसे नियोजक और कर्मचारी, पति और पत्नी या एक ही परिवार के सदस्यों के बीच है तो वह विवाद का निपटारा कराने के लिए अपना मंच चुनने के लिए स्वतंत्र हैं । विवाद के निपटारे के लिए पक्षकारों द्वारा नियुक्त मध्यस्थ का स्वरूप न्यायालय जैसा होता है क्योंकि पक्षकार उसका विनिश्चय बाध्यकर मानने के लिए सहमत होते हैं । ऐसे मध्यस्थ के खर्चों की पूर्ति

उन पक्षकारों द्वारा की जानी होती है जो मध्यस्थ को विवाद निर्देशित किए जाने के लिए सहमत होते हैं। मध्यस्थ विवादियों को सेवा प्रदान करता है और फीस प्रभारित करता है। राज्य की स्थिति मध्यस्थ जैसी ही है। सभी पक्षकार मध्यस्थ की लगातार तलाश में नहीं जा सकते। विवाद के पक्षकार माध्यस्थम् के लिए सहमत न हों। इसलिए राज्य सिविल न्याय के प्रशासन के लिए, जिस पद में वांडिक न्याय में सम्मिलित विवादों से भिन्न सभी विवाद सम्मिलित होंगे, न्यायालयों की स्थापना करता है। न्यायालय अपने अधिकार के अतिक्रमण या अपने अधिकार पर आशंकित आक्रमण या अपने अधिकार के प्रत्याख्यान की शिकायत करने वाले पक्षकार के लिए आसानी से पहुंच योग्य मंच होगा और वह न्यायालय में जा सकेगा और अपनी शिकायत दूर करा सकेगा। न्यायालय राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करता है और विवाद के दूसरे पक्षकार की हाजिरी विवश कर सकता है और विवाद का अधिनिर्णय कर सकता है। फिर भी न्यायालय एक सेवा प्रदान करता है। और उस विस्तार तक जहां तक वह सेवा है, सेवा के लिए फीस प्रभार्य है। न्यायालय फीस के उद्ग्रहण का मुख्य प्रयोजन न्यायालयों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा है और क्योंकि यह एक फीस है, इसमें तत्प्रतितत् का अंश है। यह है जो उच्चतम न्यायालय ने इस निमित्त कहा :

> 'किंतु यदि अर्थ वही है तो किसी मामले में "फीस" क्या है उस विषयवस्तु पर आधारित है जिसके संबंध में फीस अधिरोपित की गई है। इस मामले में हमारा कार्य किसी राज्य में सिविल न्याय प्रशासन है। फीस का संबंध सिविल न्याय प्रशासन से होना चाहिए। फीस का उद्ग्रहण करते समय समुचित विधान-मंडल, सभी सुसंगत कारणों, विवाद की विषयवस्तु का मूल्य, किसी वाद या मामले के अभियोजन में विभिन्न आवश्यक कदम, न्यायालयों के अनुरक्षण की ओर सिविल न्याय प्रशासन करने वाले अधिकारियों के संपूर्ण खर्च, कुछ प्रकार के मुकदमों की तंग करने वाली प्रकृति और अन्य सुसंगत विषयों पर विचार करने के लिए, सक्षम है। कुछ मामलों में वह थोड़ी फीस और अन्य मामलों में अधिक फीस अनुच्छेद 14 के उपबंधों के अधीन रहते हुए उद्गृहीत करने के लिए स्वतंत्र है। किंतु एक बात जो विधान-मंडल करने के लिए सक्षम नहीं है वह वादियों को साधारण लोक राजस्व में वृद्धि के लिए अभिदाय करने के लिए विवश करना है। दूसरे शब्दों में वह मुकदमेबाजी पर कर नहीं लगा सकता और वादियों को सड़क निर्माण या शिक्षा या अन्य हितकारी स्कीमों के लिए, जो राज्य की हों, संदाय करने के लिए विवश नहीं कर सकता। संगृहीत फीस और सिविल न्याय प्रशासन के खर्च का व्यापक सहसंबंध होना चाहिए[10]'।

इस स्थिति का विस्तृत वर्णन करते हुए, गुजरात उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने गुजरात राज्य को लागू होने में मुम्बई न्यायालय फीस अधिनियम, 1959 की पहली अनुसूची में अनुच्छेद 15 की संवैधानिक वैधता की जांच करते हुए संप्रेक्षण किया कि जो कुछ उद्गृहीत किया गया है उचित रूप से तथाकथित न्यायालय फीस है और यदि उसमें कोई वृद्धि होती है तो राज्य की वृद्धि को न्यायोचित ठहराना चाहिए। उद्ग्रहण को मान्य ठहराते हुए न्यायालय ने न्यायालय फीस के उद्ग्रहण और यह अवधारित करने के लिए कि क्या यह फीस है या बहाना और वास्तव में यह फीस नहीं है, सिविल न्याय प्रशासन के खर्चे के बीच व्यापक संबंध की जांच की। उस मामले में निर्णय यह है कि न्यायालय फीस विधिमान्य रूप से उद्गृहीत की जा सकती है क्योंकि फीस प्रदान की गई सेवा के लिए उद्गृहीत की जाती है। वह बात जिसकी जांच की जानी है वह यह है कि क्या न्यायालय फीस के उद्ग्रहण और सिविल न्याय प्रशासन के खर्चे के बीच कोई व्यापक संबंध है। निश्चित रूप से यह अर्थ निकलता है कि सिविल न्याय प्रदान करने के लिए मंच स्थापित करके, राज्य सेवा प्रदान करता है और वह सेवा प्रदान करने के लिए वह फीस प्रभारित करने का हकदार है। इसलिए, सिविल न्याय प्रणाली में न्यायालय फीस के उद्ग्रहण को न्याय पर कर नहीं कहा जा सकता।

3.13. परिस्थितियों के अनोखे संवर्ग में भारत के उच्चतम न्यायालय को न्यायालय फीस के उद्ग्रहण की बुद्धिमत्ता और ज्ञानशक्ति पर प्राधिकारपूर्ण निर्णय सुनाने का अवसर मिला। इसने भविष्य में किसी दिन न्यायालय में न्याय तक पहुंच के लिए कीमत की सांविधानिकता को न्यायपूर्ण या विधिक विनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी ली। अभिव्यक्त रूप से ऐसा कथन करने की बजाए, न्यायालय ने यह कथन करते हुए, कि जब न्यायालय फीस न्याय तक पहुंच में बाधा बन जाती है तब उद्ग्रहण की सांविधानिकता प्रश्नगत किए जाने के लिए खुली है, अपनी भावना व्यक्त की। किंतु अपनी भावना व्यक्त करते समय उसने इस विषय पर अंतिम निर्णय नहीं सुनाया।[11] कर और फीस के बीच अंतर विनिश्चयों की एक श्रृंखला से उजाग्र रूप से केंद्रीभूत हुआ है। किसी समय यह विश्वास किया जाता था कि प्रदान की गई सेवा के लिए किसी उद्ग्रहण को

फीस के रूप में न्यायोचित ठहराने के लिए तत्प्रतितत् का अंश होना चाहिए जब उस पर आपत्ति की जाए तो विधान मंडल को, की गई सेवा की मात्रा और प्राप्ति दर्शाते हुए उद्ग्रहण को न्यायोचित ठहराना चाहिए। इस कहावत को सिविल न्याय का रूप देते समय यह दर्शित किया जाना चाहिए कि सिविल न्याय प्रशासन द्वारा प्रदत्त सेवा पर व्यय का न्यायालय फीस से प्राप्ति के साथ निकट संबंध है। किंतु तत्प्रतितत् के इस अंश में हाल ही में परिवर्तन हुआ है। निस्संदेह फीस का, प्रदान की गई सेवा या प्रदत्त फायदे के साथ, संबंध होना चाहिए, ऐसा संबंध सीधा नहीं होना चाहिए, मात्र का कारण संबंध पर्याप्त हो सकेगा। न तो फीस का आपतन और न ही प्रदान की गई सेवा समान होनी चाहिए। कड़े शब्दों में तत्प्रतितत् फीस का एक ओर केवल सही सूचकांक नहीं है और न ही इसका किसी कर में अनिवार्य रूप से अभाव है। इसलिए न्यायालय फीस शीर्ष के अधीन प्राप्ति की सिविल न्याय प्रशासन को स्थापित और अनुरक्षित करने में उपगत व्यय द्वारा मूल्यांकित, प्रदत्त सेवा की मात्रा से तुलना करना अनुचित होगा। फिर भी दोनों के बीच मोटे तौर पर कोई संबंध होना चाहिए।

3.14. वे लोग जो न्यायालय फीस को समाप्त करने की वकालत करते हैं इस तथ्य से अज्ञात प्रतीत होते हैं कि सिविल न्याय प्रशासन पर एक बहुत बड़ा विन्यास किया गया है। भारत जैसा विकासशील देश, जिसे साधनों का निरंतर अभाव रहता है सिविल न्याय प्रशासन में न्यायालय फीस को समाप्त करने के आदर्श तक नहीं पहुंच सकता। न ही उसका पूर्ण समापन सराहा जा सकता है। विधि आयोग की चौदहवीं रिपोर्ट के समय यह पाया गया कि "न्यायालय फीस" शीर्ष के अधीन प्राप्ति न्याय प्रशासन पर व्यय से अधिक थी जब कि कराधान जांच आयोग, 1953-54 की रिपोर्ट से प्रतिकूल चित्र दर्शित होता है[13]। इस समय स्थिति पूर्णतया भिन्न है। सिविल न्याय प्रशासन पर इस समय उपलब्ध सेवाओं पर उपगत व्यय की न्यायालय फीस के भयानक उद्ग्रहण से प्रतिपूर्ति नहीं होती है। यदि और जब वर्तमान विधि आयोग की सिफारिश कि भारत की जनसंख्या के प्रति दस लाख के लिए वर्तमान अनुपात 10.5 न्यायाधीशों को बढ़ाकर 50 न्यायाधीश प्रति दस लाख कर दिया जाए, कार्यान्वित की जाती है तो चित्र ऐसा बनेगा कि कोई भी व्यक्ति विस्मय में पड़ जाएगा[14]। एक बार यह सिफारिश कार्यान्वित की जाती है जो आवश्यकता के कारण करनी पड़ेगी क्योंकि पिछले लंबित मामलों की बड़ी संख्या के कारण सिविल न्याय से सेवा वादियों के लिए इस समय वास्तव में बिल्कुल उपयोगी नहीं है। न्याय प्रशासन में असंरचनात्मक सेवाओं में पर्याप्त वृद्धि करनी होगी जिससे राजकोष पर और भार पड़ेगा।[15] इसलिए न्यायालय फीस को पूर्णतया समाप्त करने के प्रश्न पर भले ही इसके समापन के पक्षकारों के अनुसार यह एक आदर्श हो सकता है, विचार करने में कोई लाभ नहीं है।

3.15. किन्तु न्यायालय फीस के प्रति दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन अपेक्षित है। अभी तक बल विवाद की विषयवस्तु के मूल्य पर न्यायालय फीस पर या जिसे मूल्यानुसार न्यायालय फीस कहा जाता है, उद्ग्रहणन पर था। यह अवधारित करने के लिए कि न्यायालय फीस का क्या मापदंड होना चाहिए मुकदमा करने वाले पुरुष और न्यायालय में विवाद की विषयवस्तु के सामाजिक मूल्यांकन का कोई महत्व नहीं। आसान और सुगम दृष्टिकोण यह है : विवाद की विषयवस्तु के मूल्य को देखो और उसका क्रमबद्ध प्रतिशत न्यायालय फीस होना चाहिए। यह दृष्टिकोण बाजार अर्थव्यवस्था के सिद्धांत से पुलकित है। इसका अर्थ है कि यदि क को इतना अनुतोष चाहिए तो उसे न्यायालय फीस का संदाय इस बात के होते हुए भी करना चाहिए कि वह समाज के निर्धन वर्ग, मध्यम वर्ग या धनी वर्ग से है। न्यायालय फीस का अवधारण करने में क कभी भी चित्र में नहीं होता। न्यायालय फीस का अवधारण करने में विवाद की विषय वस्तु का मूल्य ही मार्गदर्शक कसोटी है जो माल के क्रय विक्रय के सदृश है। वादी की उपेक्षा करने और विवाद में विषयवस्तु के मूल्य पर बल देने के दृष्टिकोण से सिविल मुकदमेबाजी का वक्र दृश्य दिखाई देता है। दृष्टांतस्वरूप, किसी निर्धन व्यक्ति के लिए धन मूल्य के अनुसार विवाद की विषयवस्तु बहुत कम हो किन्तु उसके लिए जीवनमृत्यु का प्रश्न हो सकता है। दूसरी ओर, धनी व्यक्ति के लिए विवाद में विषयवस्तु के मूल्य का कोई महत्व नहीं हो सकता क्योंकि वह किसी भी परिमाण तक न्यायालय फीस का संदाय कर सकता है और स्वयं विवाद की विषयवस्तु का उसके लिए बहुत ही कम या कोई महत्व न हो। किन्तु दोनों मामलों में विवाद में विषयवस्तु के मूल्य को देखना और विषयवस्तु के पीछे व्यक्ति की उपेक्षा करना इस आरोप की मुख्य शिकायत रही है कि कुछ मामलों में न्यायालय फीस न्याय तक पहुंच में समाज के एक वर्ग के लिए आर्थिक बाधा उत्पन्न करती है। इसलिए इस बल को स्थानांतरित या उचित रूप से परिवर्तित करना अपेक्षित है।

3.16. न्यायालय फीस सुव्यवस्थीकरण समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि न्यायालय फीस की मात्रा एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न है और समिति ने उसे इस आधार पर न्यायपूर्ण ठहराया कि राज्यों के

बीच सामाजिक, आर्थिक स्थितियों में अंतर के स्तर को ध्यान में रखते हुए समिति महसूस करती है कि सभी मामलों की बाबत संपूर्ण देश में न्यायालय फीस की समान दर रखना साध्य नहीं होगा।[16] यह औचित्य इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि बल जैसा इसमें ऊपर चर्चा की गई है, विवाद में विषयवस्तु के मूल्य पर है न कि विवाद की विषयवस्तु के पीछे कौन व्यक्ति अर्थात् वादी है जो अनुतोष की तलाश में न्यायालय में आया है। एक बार यह बल परिवर्तित कर दिया जाता है तो देश के विभिन्न भागों में न्यायालय फीस के उद्ग्रहण में भिन्न बर्ताव के लिए औचित्य कम हो जाएगा और इसे समाप्त करना होगा।

3.17. इसलिए पहली बात जिसे करना अपेक्षित है यह है कि विवाद में विषयवस्तु के मूल्य पर विचार किए बिना वादियों के कुछ वर्ग न्यायालय फीस के संदाय से पूर्णतया छूट प्राप्त होंगे। न्यायालय फीस से पूर्ण छूट का फायदा निम्नलिखित रीति से दिया जाए :

(i) ग्राम न्यायालय के समस्त कार्यवाहियों में कोई न्यायालय फीस उद्गृहीत नहीं की जाएगी;[17] और

(ii) पार्श्वस्थ कृषक, फार्म श्रमिक, अनियोजित औद्योगिक कर्मकार और वे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय 12,000 रु० से अधिक नहीं है, न्यायालय फीस के संदाय से छूट प्राप्त होंगे।

समिति ने सिफारिश की कि 6,000 रुपए तक वार्षिक आय वाले वादी न्यायालय फीस के संदाय से छूट प्राप्त हों। इसने यह भी सिफारिश की कि यदि कोई राज्य सरकार 6,000 रुपए से अधिक आय वाले वादियों को छूट देने की स्थिति में है तो वह ऐसी छूट के संपूर्ण समाधान को दृष्टि में रखते हुए ऐसा कर सकती है। आय के सबूत की बाबत वादी द्वारा एक शपथपत्र स्वीकार किया जा सकता है। इसकी और सिफारिश यह थी कि यदि कोई राज्य सरकार—

(i) अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के ऐसे वादियों को, जिनकी आय 6,000 रु० प्रति वर्ष से अधिक है,

(ii) अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों को एक वर्ग के रूप में,

न्यायालय फीस के संदाय से छूट देना साध्य पाती है तो वह ऐसा कर सकती है।

3.18. 6,000 रुपए वार्षिक आय वाले वादियों को न्यायालय फीस के संदाय से दी गई छूट भ्रामक है। छठी योजना अवधि के दौरान एकीकृत ग्राम विकास कार्यक्रम के प्रभारी योजना के हिताधिकारियों की पहचान के प्रयोजन के लिए औसत पांच सदस्यों के परिवार के लिए 3,500 रु० प्रतिवर्ष पर गरीबी की रेखा मानते है। ऐसा प्रतीत होता है कि औसत पांच सदस्यों के परिवार के लिए 3,500 रु० प्रतिवर्ष पर खींची गई रेखा राष्ट्रीय नमुना सर्वेक्षण 1977-78 के बत्तीसवें चक्र पर आधारित थी। तब से मुद्रास्फीति के कारण रुपए के मूल्य में कमी हुई इसलिए गरीबी की रेखा छठी योजना अवधि में 6,400 रुपए प्रतिवर्ष पर खींची जा सकती थी और तब से यह और ऊपर चली गई होगी। इसलिए 6,000 रुपए प्रतिवर्ष पर खींची गई छूट की रेखा पूर्णतया असत्य है। तदनुसार विधि आयोग सिफारिश करता है कि वे व्यक्ति जिनकी आय 12,000 रुपए प्रति वर्ष तक है किसी कार्यवाही में न्यायालय फीस का संदाय करने से छूट प्राप्त होंगे।

3.19. समिति, व्यक्ति और कंपनियों/निगमित निकायों के बीच न्यायालय फीस की दरों में विभिन्न दरों के पक्ष में नहीं थी और उसने न्यायालय फीस के रूप में 30,000 रुपए की अधिकतम सीमा स्थित की। मुकदमेबाजी और न्यायालय फीस का संदाय करने के सामर्थ्य के प्रयोजन के लिए एक व्यक्ति और एक निगमित निकाय दो विभिन्न और स्वतंत्र वर्ग होंगे। एक व्यक्ति और एक निगमित निकाय के बीच अंतर की उपेक्षा करना स्थिति की वास्तविकताओं की उपेक्षा करना है। स्पष्ट रूप से[18], कंपनियों/निगमित निकायों की दशा में न्यायालय फीस एक व्यक्ति की तुलना में उच्चतर दर से उद्ग्रहीत की जानी चाहिए। फिर भी मूल्यानुसार न्यायालय फीस दर सभी राज्यों में इस साधारण कारण से समान होनी चाहिए कि सेवा एक जैसी होते हुए न्याय पर खर्च एक राज्य में अधिक और दूसरे राज्य में कम नही होना चाहिए। धन संबंधी मामलों पर मूल्यानुसार न्यायालय फीस की दर संरचना सिविल न्याय प्रशासन के खर्चे पर और उन व्यक्तियों द्वारा, जिनके पास उसका संदाय करने के साधन हैं, अर्थात् वे व्यक्ति जो छूट प्राप्त वर्ग में नहीं हैं, देय न्यायालय फीस पर आधारित करते हुए संगणित की जा सकती है।

3.20. यह एक दुखद अनुभव है कि निगम और समाज के धनीवर्ग के व्यक्ति न्यायालयों का उपयोग अपने छोटे-छोटे झगड़ों के लिए करते हैं। वास्तव में बहुत लोगों की राय है कि रिट अधिकारिता का

अधिकतम फायदा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निगमित और औद्योगिक रईस और समाज के धनी वर्ग के व्यक्तियों द्वारा उठाया गया है जो कर के संदाय के अपवंचन का प्रयास करते हैं। और दुर्भाग्य से, न्यायालय फीस के संदाय के मामले में उन्हें जब कोई छूट नहीं थी निर्धन से निर्धन व्यक्ति के समान माना गया है और न्यायालय फीस के संदाय से राहत तभी अभिप्राप्त की जा सकती है जब कोई व्यक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 33, नियम 1 के अधीन अपने को निर्धन व्यक्ति घोषित करा लेता है। अब जब कि छूट सीमा बढ़ा दी गई है और जब यह सिफारिश की गई है कि ग्राम न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में कोई न्यायालय फीस देय नहीं है तो सिविल न्याय प्रशासन पर व्यय की पूर्ति करने के लिए आय में हुई कमी, कंपनियों, निगमित निकायों, कर के संदाय से राहत अभिप्राप्त करने वाले व्यक्तियों और समाज के धनी अनुभागों के व्यक्तियों, अर्थात वे जो उच्चतर आयवर्ग में हैं, पर उच्चतर न्यायालय फीस के उद्ग्रहण द्वारा पूरी की जानी चाहिए। उनसे वसूलीयोग्य न्यायालय फीस और अन्य प्रभार क्या होंगे। विधि आयोग द्वारा वे पूर्ण रूप से संगणित किए गए हैं और उनको यहां दोहराना निरर्थक होगा। उस सिफारिश को इस रिपोर्ट का भाग समझा जाना चाहिए।

3.21. समिति ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाओं पर न्यायालय फीस की निम्नलिखित दर की सिफारिश की :—

(i)	बंदी प्रत्यक्षीकरण	कोई फीस नहीं
(ii)	मूल अधिकार	100 रुपए
(iii)	कर संबंधी मामले	500 रुपए
(iv)	प्रकीर्ण मामले	250 रुपए

निःसंदेह समिति बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए याचिका पर कोई फीस न लिए जाने की सिफारिश करने में पूर्ण रूप से न्यायानुमत थी और विधि आयोग इस सिफारिश के प्रति अपना पूर्ण समर्थन देता है।

3.22. किन्तु विधि आयोग केवल 100 रुपए की न्यायालय फीस के उद्ग्रहण की सराहना नहीं करता है जब मूल अधिकारों के प्रत्याख्यान की शिकायत करने वाली याचिका फाइल की जाती है। मूल अधिकारों में, नागरिक को कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार है।[20] वे लोग जो किसी वृत्ति में हैं या कारबार कर रहे हैं अपने मूल अधिकार विशिष्टतया वृत्ति करने के अधिकार की रक्षा के लिए उच्चतर न्यायालय फीस का संदाय करने में समर्थ होंगे। साधारणतया कौन इस अधिकार का अवलम्बन लेता है कुछ मामलों के प्रति निदेश करके पता चलाया जा सकता है। एक्सेल वेयर, जो एक रजिस्ट्रीकृत भागीदारी फर्म है, ने मुम्बई में एक कारखाना स्थापित किया जहां इसने लगभग 400 कर्मकार नियोजित करके निर्यात के लिए वस्त्रों का विनिर्माण किया। फर्म ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 25ण(1) के अनुसार उपक्रम की आशयित बंदी के लिए उसके अनुमोदन के लिए महाराष्ट्र सरकार पर सूचना की तामिल की। राज्य सरकार ने अनुमोदन देने से इंकार कर दिया जिसके परिणामस्वरूप भारत के उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल की गई। क्या निर्यात कारबार में लगे और अपनी एकपक्षीय कार्रवाई द्वारा 400 कर्मकारों को संभाव्यता बेकार करने वाले समुत्थान को केवल 50 रुपए के न्यायालय फीस स्टाम्प पर रिट याचिका फाइल करने के लिए, जो समिति अब 100 रुपए[21] तक पुनरीक्षित करना चाहती है, अनुज्ञात किया जाए। इसी प्रकार लोहिया मशीन्स लिमिटेड[22] ने जो एक सफल समुत्थान है, संभाव्यतः उसी रकम की न्यायालय फीस का संदाय करके आय-कर नियम, 1962 के नियम 19क की वैधता को प्रश्नगत करते हुए उच्चतम न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल की, जिसमें सफलता की दशा में कंपनी को करोड़ों रुपयों का लाभ होता और संदत्त की गई न्यायालय फीस अतिसूक्ष्म रूप से छोटी 50 रुपए की रकम थी जो उसकी सिफारिश के अधीन अब 100 रुपए तक बढ़ाई जा सकती है। विधि आयोग की यह राय है कि उन वादियों के लिए जो उस सेवा के लिए संदाय करने की स्थिति में हैं जो वे न्यायालय से अभिप्राप्त करते हैं, बड़े संतोष की बात है। जब उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि कानूनी निगम या कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई कंपनी नागरिक नहीं है और इसलिए नागरिक को अनुदत्त मूल अधिकार को रिट याचिका फाइल करके प्रवर्तित नहीं करा सकती तब कंपनी/निगम को उसके किसी एक निदेशक के साथ एक पक्षकार बनाने की युक्ति निकाली गई है और यह युक्ति सफल हो गई है। और दैवकाय निगम उपेक्षणीय फीस का संदाय करता है इसलिए विधि आयोग यह सिफारिश करेगा कि जब कोई कंपनी/निगम/कानूनी निगम/व्यक्तियों से मिलकर बना कोई निकाय, व्यवसाय संघों को छोड़कर, किसी मूल अधिकार को प्रवर्तित कराना चाहता है तब उसके द्वारा देय न्यायालय फीस 1,000 रुपए से कम नहीं होनी चाहिए।

3.23. इसी प्रकार जब किसी कर की मांग की जाती है और वह आयकर अधिनियम के अधीन निर्देश के रूप में या रिट याचिका के रूप में प्रश्नगत की जाती है तब उद्ग्रहणीय न्यायालय फीस विवाद में अंतर्वलित मांग के मूल्य के 10 प्रतिशत से कम नहीं होगी । विधि आयोग का इस निमित्त दृष्टिकोण न्यायालय फीस के मामले में असमान व्यक्तियों को समान व्यक्ति मानने का नहीं है । कोई वर्गीकरण विधिमान्य होने के लिए सुबोध अंतरों पर आधारित होना चाहिए और उसका, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों के साथ संबंध होना चाहिए ।[24] वे व्यक्ति जो न्यायालय सेवा का उपभोग करते हैं दो श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं अर्थात् (i) वे जो धनी हैं और सिविल न्याय प्रशासन सेवा के लिए संदाय कर सकते हैं और उसका उपभोग करते हैं, उनका (ii) उनसे जो सेवा के लिए संदाय नहीं कर सकते हैं, पृथक् वर्गीकरण किया जा सकता है । यह वर्गीकरण सुबोध अंतरों पर आधारित है और उसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों से अर्थात् न्याय तक पहुंच में आर्थिक बाधाओं का हटाना, असली संबंध है । विधि आयोग के दृष्टिकोण से संविधान के अनुच्छेद 14 का कोई उल्लंघन नहीं होता और न ऐसा होने का संकट या आशंका है । एक ओर निगमों, कंपनियों और व्यक्ति-निकायों और करदाताओं के प्रति और दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों के प्रति न्यायालय फीस के संदाय के मामले में भिन्न बर्ताव वर्गीकरण के सिद्धांत पर न्यायपूर्ण होगा । ऐसा विचार समिति के समक्ष केरल और पश्चिमी बंगाल के महाधिवक्ताओं द्वारा व्यक्त किया गया जिन्होंने यह प्राख्यान किया कि न्यायालय फीस के मामले में कंपनियों को रियायत देने का कोई औचित्य नहीं है । उन्होंने व्यक्तियों और निगमित निकायों/कंपनियों द्वारा न्यायालय फीस के संदाय के लिए भिन्न दरों की वकालत की । उनका विचार था कि ऐसा करने में कोई संवैधानिक बाधा नहीं है ।

3.24. समिति ने सिफारिश की कि प्रथम और द्वितीय अपीलों पर न्यायालय फीस मूल वाद पर उद्ग्रहणीय फीस की 50% होनी चाहिए, चाहे अपील मूल वाद में वादी या प्रतिवादी द्वारा हो ।[26] अब यह सुस्थापित बात है कि अपील का अर्थ वाद को आगे चलाना ही है । यदि यह सिद्धांत लागू किया जाता है तो इस बात में गंभीर संदेह है कि उसी मुकदमे में विवादों के विभिन्न प्रक्रमों पर विषयवस्तु के मूल्य पर आधारित कोई न्यायालय फीस उद्गृहीत की जा सकती है । किंतु क्योंकि प्राचीन काल से ही न्यायालय फीस अपील के ज्ञापन पर भी उद्ग्रहणीय है, इसलिए यदि इसे पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जाता है तो उलटी दिशा में यह अचानक एक मोड़ होगा । इसलिए उपर्युक्त छूट खंड के अधीन रहते हुए, विधि आयोग अपीली प्रक्रम पर उद्ग्रहणीय न्यायालय फीस के मामले में समिति की सिफारिश से सहमत है ।

3.25. समिति ने यह भी सिफारिश की कि अपकृत्य के मामलों पर नाममात्र फीस के उद्ग्रहण का प्रश्न विधि आयोग को उसकी जांच और सिफारिश के लिए निर्देशित किया जाए ।[27] अपकृत्य के शिकार व्यक्तियों द्वारा या मृत्यु की दशा में आश्रितों द्वारा प्रतिकर के लिए अधिकतम मुकदमेबाजी मोटरयान अधिनियम के अधीन होती है । धारा 92क में यह उपबंध है कि जहां मोटरयान या मोटरयानों के उपयोग से उद्भूत किसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता हो गई है वहां, यथास्थिति, यान का स्वामी या यानों के स्वामी, ऐसी मृत्यु, या निःशक्तता की बाबत उस धारा के उपबंधों के अनुसार प्रतिकर का संदाय करने के पृथक्तः और संयुक्ततः दायी होंगे । इसे कोई कसूर नहीं दायित्व कहा जाता है । धारा 92ख में उस दशा में उच्चतर प्रतिकर के संदाय का उपबंध है जिसमें मृत्यु या क्षति यान के प्रभारी व्यक्ति या यान के स्वामी के अपकृत्यकारी आचरण के कारण हुई है । धारा 94 प्रत्येक मोटर यान को किसी सार्वजनिक स्थान में उसका उपयोग करने से पूर्व, तृतीय पक्षकार जोखिम के विरुद्ध बीमा कराने के लिए बाध्यकर बनाती है । धारा 110 राज्य सरकार को ऐसा दावा अधिकरण स्थापित करने के लिए सशक्त करती है जहां सार्वजनिक स्थान में मोटर यानों के उपयोग द्वारा मृत्यु या शारीरिक क्षति के कारण प्रतिकर का दावा करने के हकदार व्यक्ति अपने दावे संस्थित कर सकें । भारत में लगभग सभी राज्यों ने दावा अधिकरण स्थापित किए हैं और तल परिवहन के सदैव विस्तारण के साथ औसतन 40,000 व्यक्ति प्रति वर्ष मोटर दुर्घटनाओं का शिकार होते हैं । प्रतिकर का दावा करने के लिए बड़ी संख्या में याचिकाएं फाइल की जाती हैं ।

3.26. जब किसी मोटर दुर्घटना के शिकार किसी व्यक्ति की सदोष कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम द्वारा हुई दुर्घटना में उसको हुई क्षतियों के कारण मृत्यु हो जाती है, तब उस व्यक्ति की, जिसकी इस प्रकार मृत्यु हो गई हो, पत्नी, पति, माता-पिता या बालक, यदि कोई हो, नुकसानी के लिए कार्रवाई संस्थित करने के हकदार हैं ।[28] भारतीय परिस्थितियों में, साधारणतया परिवार का पोषणकर्ता जो बाहर जाता है दुर्घटना का शिकार हो जाता है और यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो परिवार निराश्रित हो जाता है । पत्नी साधारणतया

अनियोजित महिला होती है और बालक अवयस्क हो सकते हैं। परिवार के पोषणकर्ता की मृत्यु से अगले दिन से जीवित रहने के लिए संघर्ष का भूत खड़ा हो जाता है । यदि मृतक के आश्रित दीनहीन दशा में हो जाते हैं और उन्हें नुकसानी के लिए कारवाई आरंभ करनी होती है तो यदि नुकसानी के लिए दावे पर मूल्यानुसार न्यायालय फीस उद्गृहीत की जाती है तो बड़ी संख्या में या तो दावेदारों को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 33 के नियम 1 का सहारा लेना होगा या दावे का त्याग करना होगा । दुर्घटना के शिकार व्यक्ति के आश्रितों द्वारा नुकसानी के लिए कार्रवाई को सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से सामाजिक न्याय के लिए कार्रवाई के रूप में मानना होगा। यह प्रत्यास्थापन का सिद्धांत है । ऐसे मामले भी हैं जिनमें सभी मानवीय आधारों का सहारा लिया जाता है । मुल्यानुसार न्यायालय फीस का उद्ग्रहण विधान और सर्वोपरि मानवीय आधारों के भाव से जो ऐसी मुकदमेबाजी को अनुप्राणित करे, असुसंगत होगा ।

3.27. समिति ने मोटर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों द्वारा प्रतिकर के दावे के लिए याचिकाओं पर न्यायालय फीस के उद्ग्रहण के बारे में विभिन्न राज्यों से उसे प्राप्त जानकारी को सारणीबद्ध रूप में दिया है । दावा की गई नुकसानी की मात्रा कुछ भी हो सब से कम 1.25 रुपए की न्यायालय फीस का उपबंध पंजाब राज्य और चंडीगढ़ संघ राज्यक्षेत्र ने किया है । अन्य राज्यों में उद्ग्रहण किसी भी रकम के लिए 10 रुपए से प्रारंभ होकर स्थिर फीस तक धन प्रतिकर के विभिन्न स्तरों में क्रमबद्ध मापमान पर कुछ प्रतिशत होता है । समिति द्वारा प्राप्त सुझाव एक ओर, जैसी आंध्र प्रदेश सरकार ने सिफारिश की न्यायालय फीस से पूर्ण छूट का और दूसरी ओर जैसी मध्य प्रदेश सरकार ने सिफारिश की 15,000 रुपए तक दावों के लिए 200 रुपए और जैसी महाराष्ट्र सरकार ने सिफारिश की, क्रमबद्ध मापमान पर न्यायालय फीस का था । मोटर दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों द्वारा प्रतिकर का दावा करने के लिए फाइल की गई याचिकाओं पर न्यायालय फीस के उद्ग्रहण से कुछ वकीलों द्वारा दावे की रकम में अंश पाने की एक अधम प्रथा उद्भूत हो गई है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष याचिका के प्रथम प्रक्रम पर कोई न्यायालय फीस नहीं होनी चाहिए के पक्ष में दो मार्गदर्शक बातें हैं, अर्थात कि अधिकतम मामलों में परिवार के पोषणकर्ता की या तो मृत्यु हो गई है या उसे स्थायी शारीरिक निःशक्तता हो गई है और परिवार दीनहीन परिस्थितियों में हो जाता है । और दूसरी यह कि यदि न्यायालय फीस उद्गृहीत की जाती है तो विधिक वृत्ति द्वारा विनिधान से नहीं बचा जा सकता ।

3.28. जयांश-क्रय यदि साबित हो जाए तो वृत्तिक आचार गठित करता है किंतु फिर भी इससे वृत्तिक आचार-संहिता किस सीमा तक क्षीण हुई है, का अनुमान समाचार पत्रों में प्रकाशित हाल ही के एक मामले से लगाया जा सकता है जिसमें वृत्तिक विशेषण "रोगी वाहन अनुसरण-एंबुलैंस चैजर्स" को विधिसम्मत ठहराया गया । महुदा, जिला नंदेड, गुजरात राज्य का मनी भाई जैना भाई 1980 में दुर्घटना का शिकार हुआ जिसमें उसकी दायी टांग जाती रही और उसकी पत्नी बैन को घातक क्षति हुई और उसके पुत्र को गंभीर क्षति हुई । मनी भाई जैना भाई और उसके क्षत पुत्र ने नंदेड के दिलीप पटेल अधिवक्ता को अभिनियोजित किया और मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण नंदेड़ में प्रतिकर के लिए दावा संस्थित किया । अधिकरण ने मनीभाई को 59,025 रुपए अधिनिर्णीत किए । रकम वकील ने प्राप्त की और कथालाल में बैंक आफ इंडिया की शाखा में अनुरक्षित लेखा सं. 5646 में जमा की । बाद में मुकदमेबाजी और अपनी फीस का हिसाब करके वकील ने मनीभाई को केवल 3,500 रु. का संदाय किया और अपने पास 55,500 रुपए रख लिए । दावेदार मनीभाई ने वकील से लेखा प्रस्तुत करने की और केवल विधिक रूप से देय फीस की कटौती करके पूर्ण रकम के संदाय की अपेक्षा की । कोई संतोषजनक उत्तर प्राप्त करने में असफल रहने पर मनीभाई ने अपने अधिवक्ता रावजी भाई के माध्यम से नंदेड में सिविल न्यायालय में, जिसके पीठासीन न्यायाधीश श्री मन्कड़ थे वाद फाइल किया ।[30] दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्ति उन्नति के शिकार हो जाते हैं क्योंकि वे कार्रवाई आरंभ करने के लिए न्यायालय फीस का संदाय करने में असमर्थ होते हैं, जब नुकसानी की मात्रा पर मूल्यानुसार फीस उद्गृहीत की जाती है । इस बात के लिए दो विचारणीय बातें हैं कि विधि आयोग की यह दृढ़ राय क्यों है कि मोटर दुर्घटना दावा अधिकरणों के समक्ष मोटर दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों द्वारा याचिकाओं पर एक रुपए की सांकेतिक रकम के सिवाय कोई न्यायालय फीस उद्गृहीत नहीं की जानी चाहिए । निसंदेह जब याचिका में निर्णय दावेदार के पक्ष में अधिनिर्णय का होता है तो विरोधी प्रत्यर्थी से अधिनिर्णीत रकम पर न्यायालय फीस का संदाय करने की अपेक्षा की जानी चाहिए । परन्तु यदि याचिका किसी कारण से खारिज कर दी जाती है तो मोटर दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों या उनके आश्रितों से कोई न्यायालय फीस देने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

3.29. संसद् ने, हाल में, रेल दावा अधिकरण अधिनियम, 1987 अधिनियमित किया है। अधिनियम केन्द्रीय सरकार को एक दावा अधिकरण स्थापित करने के लिए सशक्त करता है जिसका नाम रेल दावा अधिकरण होगा जो अधिनियम के द्वारा या उसके अधीन उसको प्रदत्त अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करेगा। धारा 13 दावा अधिकरण को ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करती है जो उसके गठन से पूर्व किसी सिविल न्यायालय या रेल अधिनियम के उपबंधों के अधीन नियुक्त किसी दावा आयुक्त द्वारा प्रयोक्तव्य थीं जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ रेल द्वारा ले जाए जाने के लिए रेल प्रशासन को सौंपे गए जीव-जंतुओं या माल की हानि, नाश, नुकसान, क्षय या अपरिदान के लिए प्रतिकर और रेल अधिनियम की धारा 82क के अधीन देय प्रतिकर है। धारा 82क यात्रियों को ले जाने वाली रेलगाड़ियों की दुर्घटनाओं की बाबत रेल प्रशासन के दायित्व को विहित करती है। प्रतिकर का दावा करने वाला कोई व्यक्ति दावा अधिकरण से आवेदन कर सकता है। धारा 16 की उपधारा (2) में यह उपबन्ध है कि ऐसे प्रत्येक आवेदन के साथ ऐसे दस्तावेज या अन्य साक्ष्य और ऐसे आवेदन के फाइल किए जाने की बाबत ऐसी फीस तथा आदेशिकाओं की तामील या निष्पादन के लिए ऐसी अन्य फीस होगी जो विहित की जाए। धारा 30 में जो अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करती है, अन्य बातों को साथ यह उपबन्ध है कि नियम आवेदन का प्ररूप, ऐसे आवेदन के साथ दिए जाने वाले दस्तावेज और अन्य साक्ष्य और ऐसे आवेदन के फाइल किए जाने की बाबत फीस और धारा 16 की उपधारा (2) के अधीन आदेशिकाओं की तामील या निष्पादन के लिए फीस विहित करेंगे। पूछताछ से पता चला है कि अधिनियम दिसंबर, 1987 में प्रवृत्त हो गया है किंतु अधिनियम के अधीन नियम अभी तक नहीं बनाए गए हैं।

3.30. यह नहीं भूलना चाहिए कि दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर सामाजिक न्याय के स्वरूप का अंश या निःशक्तता की दशा में संविधान के अनुच्छेद 41 द्वारा अनुध्यात अनुतोष होता है। सामाजिक न्याय के रूप में ऐसा अनुतोष अभिप्राप्त करने के लिए, यदि किसी से कोई न्यायालय फीस देने की अपेक्षा की जाती है तो कई मामलों में अनुतोष अप्राप्य होगा। जब रेल दावा अधिकरण अधिनियम, 1987 के अधीन नियम बनाए जाएंगे तो विधि आयोग या तो इस उपबंध की, कि कोई न्यायालय फीस उद्गृहीत नहीं की जाएगी या एक रुपए की सांकेतिक न्यायालय फीस उद्गृहीत की जाएगी, आशा करता है।

3.31. अपील के प्रक्रम पर, यदि अपील 10,000 रुपए के दावे तक सीमित है तो कोई न्यायालय फीस उद्गृहीत नहीं की जाएगी। 10,000 रुपए से अधिक की रकम के लिए, अपील में अन्तर्वलित रकम के 5 प्रतिशत की दर से न्यायालय फीस उद्गृहीत की जानी चाहिए। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि साधारण बीमा के राष्ट्रीयकरण किए जाने से, तृतीय पक्षकार जोखिम के लिए अनिवार्य बीमा के लिए कानूनी उपबन्ध की दृष्टि से, मोटर दुर्घटना के शिकार व्यक्ति द्वारा प्रतिकर के लिए प्रत्येक आवेदन में साधारण बीमा निगम या उसकी समनुषंगी कंपनियों में से कोई एक कंपनी एक पक्षकार होती है। यदि याचिका में अधिनिर्णय दिया जाता है तो साधारणतया खर्चे अधिनिर्णीत किए जाते हैं जिनमें न्यायालय फीस सम्मिलित होती है और साधारण बीमा निगम या उसकी समनुषंगी को न्यायालय फीस देनी होगी। इसलिए अधिकतम न्यायालय फीस पब्लिक सैक्टर उपक्रम से आएगी। मोटर दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों द्वारा प्रतिकर के लिए याचिकाओं पर न्यायालय फीस के उद्ग्रहण से भिन्न बर्ताव क्यों किया जाता है यह कई बातों में से एक बात है।

3.32. मोटर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों द्वारा या जहां मृत्यु हो गई है, मृतक के आश्रितों द्वारा प्रतिकर के लिए दावे के अतिरिक्त लगभग अपकृत्य संबंधी सभी मामलों में, सिद्धांत, हुए सिविल दोष के लिए नुकसानी का सिद्धांत है। मानहानि, अतिचार, हमले, प्रहार, सदोष परिरोध और इसी प्रकार के अपकृत्य के लिए नुकसानी के लिए दावा हो सकेगा। इस वर्ग के मामलों में मुकदमेबाजी करने में किसी मानवीय सिद्धांत का प्रश्न नहीं उठता है। इसलिए, छूट खंड के अधीन रहते हुए, व्यक्ति का ध्यान रखते हुए, नुकसानी के लिए दावे पर मूल्यानुसार न्यायालय फीस उद्गृहीत की जानी चाहिए।

3.33. समिति द्वारा की गई सिफारिशों का अनुसरण किए बिना यहां की गई सिफारिशों के अधीन रहते हुए यह समझा जाएगा कि समिति की शेष सिफारिशों का विधि आयोग समर्थन करता है। आसानी से देखने के लिए समिति की सिफारिशें उपाबंध में अधिकथित की गई हैं।

अध्याय 4

पूर्वाशाएं

4.1. अनुसरित किए जाने वाले आदर्श को एक वाक्य में इस प्रकार संक्षेप रूप से कहा जा सकेगा : किसी भी किस्म की आर्थिक असमर्थता किसी व्यक्ति को न्याय तक पहुंच से प्रवारित नहीं करेगी। व्यक्ति समाज के किसी वर्ग धनी या निर्धन, से हो, प्रत्येक को किसी किस्म की आर्थिक बाधा की अड़चन के बिना न्याय तक पहुंच होनी चाहिए। कोई विकासशील समाज भी इसे एक आदर्श के रूप में बना सकता है। यदि आदर्श को ध्यान में रखा जाना है तो विधि आयोग ने वह दृष्टिकोण न अपनाया होता जो उसने इस रिपोर्ट में अपनाया है न ही विधि मंत्रियों की समिति को न्यायालय फीस की समाप्ति की अपनी 1980 की स्थिति से हटकर उसके सुव्यवस्थीकरण की 1984 की स्थिति में आना पड़ता। विधि आयोग का दृष्टीकोण इसलिए इस निमित्त साधारणतया घृष्ट होते हुए और दृढ़ न होते हुए, सांसारिक है। आयोग वास्तविकताओं की दृढ़ धरातल पर खड़ा है क्योंकि इसके विचार में, प्रत्येक सिफारिश जो यह करता है और अब तक संख्या में अनेक हैं, प्रत्येक में विकासशील समाज के साधनों को ध्यान में रखा गया है। इसलिए विधि आयोग यह बताने के अन्तिम छोर तक पहुंच गया है कि न्याय प्रशासन के विन्यास के लिए कहां से साधन जुटाए जाएंगे।[1]

4.2. इसलिए दूसरा दृष्टीकोण यह है कि जहां उपलब्ध है वहां से लो और जहां इसकी आवश्यकता है वहां दो। इस रिपोर्ट में यह बात धन के सिद्धांत और उस पर आधारित वर्गीकरण को विधिपूर्ण ठहराती है। वास्तव में कराधान का यही सिध्दांत है जो उच्चतर आय वर्ग से अधिक कर के संदाय के लिए अनुज्ञात करता है चाहे राज्य की सेवाएं, उनके लिए जो संदाय करते हैं या जो संदाय नहीं कर सकते समान रूप से उपलब्ध हैं। इस बृहत्तर सिद्धांत को विधि आयोग के दृष्टीकोण को तब तक अनुप्रमाणित करना चाहिए जब तक कि राज्य व्यक्ति की प्रास्थिति, वर्ग जिसका वह है और लींग का विचार किए बिना न्यायालय फीस को पूर्णतया समाप्त करने की स्थिति में न हो। विधि आयोग आशा करता है कि हम इस आदर्श तक निकट भविष्य में पहुंच जाएंगे।

4.3. किन्तु तब तक प्रश्न यह है कि मार्गदर्शक बात क्या हो और यहां विधि आयोग का दृष्टिकोण अभी तक स्वीकृत मानक का अनुसरण नहीं करता अर्थात् बल विवाद की विषयवस्तु पर है न कि वादी पर जो न्यायालय में आता है। अब तक मूल्यानुसार के पर्वत के पीछे वादी को अदृश्य रखा गया है। यह वादी ही है जिसे न्यायालय की सेवाओं की आवश्यकता है। उसके दृष्टिकोण से विवाद की विषयवस्तु, उसका मूल्यांकन, उसकी जीवन शैली में उसका स्थान ही महत्वपूर्ण है। लाखों रुपयों के विवाद का करोड़ों में खेलने वाले व्यक्ति के लिए कोई या बहुत कम मूल्य हो। किन्तु कुछ रुपए का विवाद एक निर्धन व्यक्ति या बहुत अच्छी परिस्थितियों में न होने वाले व्यक्ति को बना सकता है या बिगाड़ सकता है। इसलिए मूल दृष्टीकोण मूल्यानुसार पर्वत को हटाने का और अदृश्य वादी को दृश्यमान करने का रहा है और न्यायालय फीस के लिए सभी विचार का वही आरंभिक बिन्दु होगा। इस रिपोर्ट का यही मूल दृष्टीकोण है।

4.4. क्या इसके लिए और औचित्य की आवश्यकता है ? विधि और न्याय मंत्रालय का न्याय विभाग, जिसने विधि मंत्रियों की रिपोर्ट अग्रेषित की, इस दृष्टीकोण के लिए युक्तिपूर्वक कथन का स्वयं उपबंध करता है। 1980 में इस देश के विकास में असुविधापूर्ण समय में उस समय की समिति ने इस आदर्श का अनुसरण किया। विधि आयोग भी उनकी राय से अर्थात् भयानक न्यायालय फीस की समाप्ति, सहमत होने में अति प्रसन्न होता। किन्तु विधि आयोग द्वारा कार्य अपने हाथ में लेने से पूर्व, विधि मंत्रियों की समिति ने स्थिति को वास्तविकता की दृष्टि से पुनः आंका और न्यायालय फीस को बनाए रखा और केवल उसके सुव्यवस्थीकरण की सिफारिश की।

4.5. विधि आयोग अब भी उस आदर्श का भागतः अनुसरण करता है। विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 12,000 रुपए वार्षिक आय वाला व्यक्ति या अन्य श्रेणियां जिनका इस रिपोर्ट में विनिर्दिष्ट रूप से अधिकथन किया गया है किसी मामले में कार्यवाही के किसी प्रक्रम में न्यायालय फीस के संदाय से

छूट प्राप्त होगी । यह समाप्ति उनके पक्ष में है जो ठीक प्रकार से इसके भागी हैं । किंतु किसी विकासशील समाज को साधनों की आवश्यकता होती है और इसलिए उन व्यक्तियों की बाबत, जो न्यायालयों तक पहुंच में पुनरीक्षित न्यायालय फीस या न्यायालय सेवा प्रभारों की पुनरीक्षित वसूली में थोड़ी सी भी असुविधा महसूस नहीं करेंगे, न्यायालय फीस और सिविल प्रशासन के सेवा प्रभारों को प्रचुर मात्रा तक बढ़ा दिया गया है । उनके लिए यह थोड़ी सी असुविधा है । राज्य के लिए जैसी कुछ पूर्ववर्ती रिपोर्टों[2] में सिफारिश की गई है, न्याय प्रशासन की सेवाओं का विस्तार करने के लिए आय का महत्वपूर्ण द्वार है । इसलिए कोई भी नहीं कह सकता कि दृष्टीकोण काल्पनिक है और यही इसके लिए औचित्य है ।

4.6. फिर भी विधि आयोग को अतिप्रसन्नता होगी यदि, यथास्थिति, राज्य सरकारें या भारत सरकार न्यायालय फीस को विधि सम्मत शासन द्वारा शासित समाज से असंगत समझे और इसलिए चाहेगा कि उसे समाप्त कर दिया जाए ।

4.7. इस आयोग के गठन से लगभग दो वर्ष के अत्यधिक विलम्ब के पश्चात् इस आयोग को भारत सरकार द्वारा पांच विशेषज्ञों की सहायता की व्यवस्था की गई, प्रत्येक विशेषज्ञ का कार्यकाल छह मास था । उनमें से प्रत्येक ने भिन्न विनिर्दिष्ट विषयों पर कार्य करने की जिम्मेदारी ली । आचार्य एच. सी. ढोलकिया, विधि संकायाध्यक्ष, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा ने "मुकदमेबाजी का खर्च" प्रश्न पर अनुसंधान का जिम्मा लेकर आयोग की सहायता करने में सहमत हुए । विधि आयोग को आचार्य ढोलकीया से प्राप्त सहायता के लिए उनके प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहिए जो इसके द्वारा स्वीकार की जा रही है ।

डी. ए. देसाई
अध्यक्ष ।

वी. एस. रमा देवी,
सदस्य सचिव ।

नई दिल्ली,
.....जुलाई, 1988.

टिप्पण और संदर्भ

अध्याय 1

1. भारत का विधि आयोग, न्यायिक प्रशासन में अवसंरचनात्मक सेवाओं के लिए साधन आबंटन पर 127वीं रिपोर्ट — (न्यायपालिका में जनशक्ति योजना पर रिपोर्ट की निरंतरता : एक ब्लूप्रिंट) ।
2. एम० केपेलेटि (संपादित), न्याय तक पहुंच, जिल्द 1, पुस्तक 2, पृष्ठ 915।
3. यथोक्त, पृष्ठ 916।

अध्याय 2

1. उन मामलों की सूची के लिए, जहां मुकदमेबाजी व्यय क्लौलीयोग्य अभिनिर्धारित किया गया है, चतुर्वेदी और पिठीसरिया, आय-कर विधि, जिल्द 2, पृष्ठ 1403 (तीसरा संस्करण, 1983) ।
2. भारत का विधि आयोग,ग्राम न्यायालय पर रिपोर्ट।
3. यथोक्त, पैरा 6.15. पृष्ठ 36 ।
4. यथोक्त, पैरा 6.12, पृष्ठ 35 ।
5. मगिराम बनाम ब्रजमोहन और अन्य (1983)4 उच्चतम न्यायालय मामले 36 ।
6. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, धारा 6 ।
7. भारत का विधि आयोग, ग्राम न्यायालय पर 114वीं रिपोर्ट, पैरा 6.6, पृष्ठ 30-32 ।
8. सिविल प्रकिया संहिता, 1976 का आदेश 22 नियम 3 और 4 देखें ।

अध्याय 3

1. अनुच्छेद 145(1)(च) भारत का संविधान ।
2. न्यायालय फीस (हरियाणा संशोधन) अधिनियम, 1974 ।
3. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट, अध्याय 22 पैरा 1, पृष्ठ 487 ।
4. न्यायालय फीस के सुव्यवस्थीकरण पर विधि मंत्रियों की समिति की रिपोर्ट, अक्तूबर,1984, पृष्ठ 3-4 ।
5. दृष्टांत देने के लिए, हरियाणा में प्रतिकर के संदाय के लिए 1979 तक मोटरयान अधिनियम, 1939 की धारा 110क के अधीन कोई न्यायालय फीस स्टाम्प उद्ग्रहणीय नहीं थी जब एक संशोधन पुर:स्थापित किया गया जिसमें यह उपबंध था कि चालीस हजार रुपए तक प्रतिकर के दावों के लिए आवेदन पर दस रूपए की न्यायालय फीस लगेगी और इससे अधिक रकम के लिए न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 के अधीन बादों के संस्थित किए जाने पर मूल्यानुसार फीस के रूप में प्रभार्य रकम का एक चौथाई होगी। पंजाब मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (हरियाणा सातवां संशोधन) नियम, 1979 का नियम 22 देखें ।
6. ऊपर टिप्पण 3, पैरा 6, पृष्ठ 489 ।
7. यथोक्त, पैरा 42, पृष्ठ 509 ।
8. कराधान जांच आयोग, 1953 की रिपोर्ट,जिल्द 3, पृष्ठ 107 ।
9. नवम्बर 3, 1987 को हुई परामर्श समिति की बैठक की कार्यवाहियां ।
10. मद्रास सरकार बनाम जैनिथ लेंग एण्ड इलेक्ट्रिकल लिमिटेड, अखिल भारतीय रिपोर्टर 1973, उच्चतम न्यायालय 724 ।
11. मैसर्स सेंट्रल कोलफील्डस लिमिटेड बनाम मैसर्स जसवाल कोल कंपनी, 1980 (अनुपूरक) उच्चतम न्यायालय मामले 229 ।
12. दिल्ली नगर निगम और अन्य बनाम मुहम्मद यासीन (1983) 3 उच्चतम न्यायालय मामले 229 ।
13. ऊपर टिप्पण 3, 496 पर : ऊपर टिप्पण 8 ।
14. भारत का विधि आयोग, न्यायपालिका में जनशक्ति योजना पर 120वीं रिपोर्ट : एक ब्लूप्रिंट ।
15. भारत का विधि आयोग, न्यायिक प्रशासन में अवसंरचनात्मक सेवाओं के लिए साधन आबंटन पर 127वीं रिपोर्ट — (न्यायपालिका में जनशक्ति योजना पर रिपोर्ट की निरंतरता : एक ब्लूप्रिंट) ।
16. ऊपर टिप्पण 4, अनुभाग 7, पैरा 3, पृष्ठ 40 ।
17. औचित्य के लिए भारत के विधि आयोग की ग्राम न्यायालय पर 114वीं रिपोर्ट, पैरा 6.15, पृष्ठ 36 देखें ।
18. विस्तृत कारणों और औचित्य के लिए निम्नलिखित टिप्पण 19 देखें ।
19. इस विषय पर पूर्ण सिफारिश के लिए निम्नलिखित टिप्पण 15, अध्याय 5, पैरा 5.15 से 5.19 और विशेष रूप से पैरा 5.18 के प्रति निर्देश करें ।
20. भारत के संविधान का अनुच्छेद 19(1)(छ) ।

3—279 M. of L & J/ND/89

21 एक्सेल वेयर बनाम भारत संघ (1978) उच्चतम न्यायालय मामले 224 ।

22. लोढिया मशीन्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1985) 2 उच्चतम न्यायालय मामले 197 ।

23. दिल्ली क्लाथ और जनरल मिल्स बनाम भारत संघ (1983) 3 उच्चतम न्यायालय रिपोर्टर ।

24. ऊपर टिप्पण 4, पैरा 8.15, पृष्ठ 16 ।

25. विशेष न्यायालय विधेयक के विषय में, सुप्रीम भारतीय रिपोर्टर 1978 उच्चतम न्यायालय 478 ।

26. ऊपर टिप्पण 4, अनुभाग 7, पैरा 11, पृष्ठ 41 ।

27. यथोक्त, पैरा 34, पृष्ठ 43 ।

28. घातक दुर्घटना अधिनियम, 1885 की धारा 1(क) ।

29. ऊपर टिप्पण 4, पैरा 30.1 और 30.2, पृष्ठ 29-31 ।

30. अहमदाबाद से प्रकाशित दैनिक गुजरात समाचार, तारीख जून 15, 1988, पृष्ठ 7, स्तंभ 5 और 6 ।

अध्याय 4

1. भारत का विधि आयोग — न्यायिक प्रशासन में अवसंरचनात्मक सेवाओं के लिए साधन आबंटन पर 127वीं रिपोर्ट — (न्यायपालिका में जनशक्ति योजना पर रिपोर्ट की निरंतरता : एक ब्लूप्रिंट), अध्याय 5 ।

2. भारत का विधि आयोग — न्यायपालिका में जनशक्ति योजना पर 120वीं रिपोर्ट : एक ब्लूप्रिंट, भारत का विधि आयोग, न्यायिक नियुक्तियों के लिए नए मंच पर 121वीं रिपोर्ट; भारत का विधि आयोग, 127वीं रिपोर्ट, ऊपर टिप्पण 1 ।

न्यायालय फीस के सुव्यवस्थीकरण पर विधि मंत्रियों की समिति की अक्तूबर, 1984 की रिपोर्ट ।

निष्कर्षों/सिफारिशों का सारांश

साधारण

1. कुछ वर्षों में, कई राज्यों ने धन संबंधी वादों पर मूल्यानुसार फीस, केन्द्रीय न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 में जो फीस विहित की गई थी, उससे कई गुणा बढ़ा दी है । दरें एक से दूसरे राज्य में भिन्न हैं और कुछ राज्यों में अंतर बहुत अधिक है । 1870 के उक्त अधिनियम में धन संबंधी वादों में मूल्यानुसार फीस की अधिकतम सीमा 3,000 रुपए थी । अब केवल नौ राज्यों में अधिकतम सीमा 10,000 रुपए से 15,000 रु० तक है ।

(पैरा 4.1 : 6.4 और 6.5)

2. समिति न्यायालय फीस की संरचना में मोटे तौर पर मूल्यानुसार फीस में कमी, कुछ प्रवर्गों के वादियों और कुछ प्रवर्गों के मामलों में न्यायालय फीस के साथ/न्यायालय फीस के उद्ग्रहण से छूट; और कुछ प्रकार के मामलों में न्यायालय फीस के लौटाए जाने की सिफारिश करती है ।

(पैरा 502)

3. राज्यों में सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में अंतर के स्तर को ध्यान में देखते हुए, समिति महसूस करती है कि सभी मामलों की बाबत संपूर्ण देश में न्यायालय फीस की समान दर रखना साध्य नहीं है ।

मूल्यानुसार न्यायालय फीस

4. वित्तीय कठिनाईयों को देखते हुए धन संबंधी वादों और अन्य मदों पर जैसे प्रोबेट/प्रशासन पत्र दिए जाने के लिए आवेदन और उत्तराधिकार प्रमाणपत्र जारी करने के लिए मूल्यानुसार आधार पर न्यायालय फीस के उद्ग्रहण की पद्धति को सभी चालू रहने दिया जाए ।

(पैरा 8.3)

5. विभिन्न राज्यों में धन संबंधी मामलों पर मूल्यानुसार फीस की दर संरचना का इस प्रकार पुनर्विलोकन और पुनरीक्षण किया जाए जिससे दर निम्नतम स्तर पर 10 प्रतिशत से उच्चतम स्तर पर कम होकर 1 प्रतिशत हो जाए । विभिन्न दरों को कम करने के लिए स्तरों का अवधारण राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाना चाहिए । इससे यह विवक्षा नहीं है कि जहां दर कम है वहां उसे 10 प्रतिशत कर दिया जाए । मूल्यानुसार की दस प्रतिशत की दर निम्नतम स्तर के लिए अधिकतम सीमा है ।

(पैरा 8.8)

6. चाहे न्यायालय फीस पर अधिकतम सीमा रखने के लिए कोई विधिक अपेक्षा नहीं है तो भी उन राज्यों में जहां ऐसी अधिकतम सीमा नहीं है, अधिकतम सीमा रखना वांछनीय है । न्यायालय फीस पर 30,000 रुपए की अधिकतम सीमा रखना उचित होगा ।

(पैरा 8.12)

7. समिति व्यक्तियों और कंपनियों/निगमित निकायों के बीच न्यायालय फीस की भिन्न दरों की कोई सिफारिश नहीं करती है ।

(पैरा 8.6)

8. प्रोबेट/प्रशासन पत्र दिए जाने के लिए आवेदन पर न्यायालय फीस की दर निम्नलिखित प्रकार से हो :—

संपत्ति का मूल्य	न्यायालय फीस की दर
(क) प्रतिवादित मामले	
(i) एक लाख रुपए तक	कोई फीस नहीं
(ii) एक लाख से अधिक किंतु 2 लाख रु० से अनधिक	एक लाख रुपए से अधिक का 1%
(iii) 2 लाख रुपए से अधिक	दो लाख रुपए के लिए फीस धन शेष का 1% से 5% तक; (5% अधिकतम होगी) (विभिन्न स्तरों के लिए दरों में कमी करना राज्य सरकारों द्वारा अवधारित किया जाएगा)
(ख) अप्रतिवादित मामले	
(i) एक लाख रुपए तक	कोई फीस नहीं
(ii) एक लाख रुपए से अधिक	एक लाख रुपए से अधिक मूल्य का 1/4%

(पैरा 9.8)

9. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के अधीन उत्तराधिकार प्रमाणपत्र जारी करने के लिए आवेदन पर न्यायालय फीस निम्नलिखित प्रकार से हो :—

(क) प्रतिवादित मामले	
(i) 25,000 रुपए तक	कोई फीस नहीं
(ii) 25,000 रुपए से अधिक	25,000 रुपए से अधिक मूल्य का 1% से 5% (5% अधिकतम होगी) विभिन्न स्तरों के लिए दरों में कमी करना राज्य सरकारों द्वारा समुचित रूप से अवधारित किया जाएगा ।
(ख) अप्रतिवादित मामले	
(i) 25,000 रुपए से अधिक	कोई फीस नहीं
(ii) 25,000 रुपए से अधिक	25,000 रुपए से अधिक के मूल्य का 1/4%

10. निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए आवेदनों पर फीस उद्ग्रहण करने की वर्तमान पद्धति चालू रहे । (पैरा 10.3)

11. प्रथम और द्वितीय अपीलों पर न्यायालय फीस मूल वाद पर उद्ग्रहणीय फीस का 50 प्रतिशत होनी चाहिए चाहे अपील मूल वाद में वादी द्वारा या प्रतिवादी द्वारा हो । (पैरा 10.8)

न्यायालय फीस से छूट

12. 6,000 रुपए तक की वार्षिक आय वाले वादी न्यायालय फीस के संदाय से छूट प्राप्त हों । यदि कोई राज्य सरकार 6,000 रुपए से अधिक वाले वादियों को छूट देने की स्थिति में है तो वह ऐसी छूट के समाधान को ध्यान में रखते हुए, ऐसा कर सकेगी । आय के सबूत के संबंध में वादी का शपथपत्र स्वीकार किया जा सकेगा । (पैरा 12.4)

13. यदि कोई राज्य सरकार :

(i) अनुसूचित जाति/अनूसूचित जनजाति के ऐसे वादियों को, जिनकी वार्षिक आय 6,000 रुपए से अधिक है, या

(ii) अनुसूचित जाति/अनूसूचित जनजाति को एक श्रेणी के रूप में, न्यायालय फीस के संदाय से छूट देना साध्य समझती है तो वह ऐसा कर सकेगी । (पैरा 13.2)

14. विवाह संबंधी मामलों में स्त्रियों को न्यायालय फीस के संदाय से छूट दी जाए । (पैरा 14 और 28.2)

15. भरणपोषण के लिए वादों पर बालकों को न्यायालय फीस के संदाय से छूट दी जाए ।

16. 6,000 रुपए की वार्षिक आय की सीमा वाले वादियों को छूट देने के लिए सिफारिश निर्धन वादियों के हितों को ध्यान में रखेगी । किसी निर्धन व्यक्ति को न्यायालय फीस के संदाय से छूट और उस दशा में उससे फीस की वसूली के लिए जब वाद असफल हो जाता है या वापस ले लिया जाता है या खारिज कर दिया जाता है या जब उसका उपशमन हो जाता है, वर्तमान उपबंध 6,000 रुपए से अधिक की वार्षिक आय वाले निर्धन व्यक्तियों के संबंध में लागू बना रहेगा । (पैरा 16.2)

17. न्यायालय फीस के संदाय से वादियों को छूट देने के लिए इस समिति द्वारा (पैरा 12.4 देखें) सिफारिश की गई 6,000 रुपए वार्षिक आय की सीमा सामाजिक रूप से/आर्थिक रूप से दुर्बल वर्गों के बीच वास्तव में दरिद्र व्यक्तियों का ध्यान रखेगी । (पैरा 17)

18. आय सीमा के आधार पर समिति द्वारा सिफारिश की गई छूट की साधारण स्कीम द्वारा पिछड़े राज्यों में रहने वाले व्यक्तियों का ध्यान रखा जाएगा । (पैरा 18)

19. आय पर आधारित छूट के संबंध में की गई सिफारिश द्वारा शारीरिक रूप से और मानसिक रूप से असुविधाग्रस्त व्यक्तियों में से आर्थिक रूप से असुविधाग्रस्त व्यक्तियों का ध्यान रखा जाएगा । (पैरा 19)

20. आय की सीमा पर आधारित छूट की साधारण स्कीम में साहूकार अधिनियमों के अधीन वाद और कार्यवाही करने वाले भूमिहीन व्यक्तियों, ऋणियों के हित में मोटे तौर पर आ जाएंगे । (पैरा 20)

21. वार्षिक आय के आधार पर समिति द्वारा सिफारिश की गई छूट की साधारण स्कीम उन कृषकों के हितों का ध्यान रखेगी जिन्हें सहायता की आवश्यकता है ।

जहां तक सूखा आदि के दौरान राहत का संबंध है समिति सिफारिश करती है कि जब भी स्थिति में ऐसी अपेक्षा हो राज्य सरकारों द्वारा छूट दी जा सकेगी । (पैरा 21)

22. (i) सरकारी सेवकों को विशेष रियायत देना उचित नहीं होगा । उनकी स्थिति भी दूसरे वादियों जैसी होनी चाहिए ।

(ii) सेवा शर्तों विषयक मामलों पर कर्मचारियों को एक श्रेणी के रूप में न्यायालय फीस के संदाय से छूट देने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 32.3)

23. आय पर आधारित साधारण छूट जैसे अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध है वैसे कर्मकारों को उपलब्ध रहेगी । (पैरा 23)

24. वे सभी वादी जो न्याय पंचायतों के समक्ष वाद फाइल करते हैं यदि पहले छूट-प्राप्त नहीं हैं तो न्यायालय फीस के संदाय से छूट-प्राप्त होंगे । (पैरा 24)

25. किसी विशेष मूल्य के वादों को सिद्धांत के रूप में न्यायालय फीस से छूट देना साध्य नहीं होगा । (पैरा 26.6)

26. विधिक सहायता मामले (उन मामलों के सिवाय जिनमें ऐसी सहायता उन व्यक्तियों को भी दी जाती है जिनकी वार्षिक आय 6,000 रुपए से अधिक है) वार्षिक आय सीमा पर आधारित छूट के लिए की गई सिफारिश के अन्तर्गत स्वत: आ जाएंगे । (पैरा 27.5)

27. किसी वादी को उसके स्वामित्व में किसी गृह का, चाहे वह उसका एकमात्र ही गृह क्यों न हो, कब्जा पाने के लिए वाद पर न्यायालय फीस के संदाय से छूट देना या उसमें कमी करना साध्य नहीं है और उसकी सिफारिश नहीं की जाती है । (पैरा 33.2)

न्यायालय फीस में कमी

28. मोटर दुर्घटना दावों के संबंध में मामलों की बाबत सिफारिश निम्नलिखित प्रकार से है :—

(i) अधिकरण के समक्ष दावेदार द्वारा देय फीस एक लाख रुपए तक 10 रुपए होनी चाहिए ।

(ii) यदि रकम एक लाख रुपए से अधिक है तो फीस एक लाख रुपए से अधिक की रकम का 1.2 प्रतिशत होनी चाहिए ।

(iii) ऊपर (ii) में वर्णित मामलों में, फीस का 50 प्रतिशत दावा फाइल करने के समय संदत्त किया जाना चाहिए और शेष 50 प्रतिशत डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् संदत्त किया जाना चाहिए ।

(iv) ऊपर (iii) के अधीन देय फीस की संगणना करने में डिक्रीत रकम न कि दावाकृत रकम (यदि दोनों में अंतर हो) को हिसाब में लिया जाना चाहिए । दावा प्रस्तुत करते समय संदत्त की गई रकम को ध्यान में रखते हुए यथायोग्य समायोजन किया जाए ।

(v) अपील के प्रक्रम पर, फीस अधिकरण के अधिनिर्णय और अपील में दावा की गई रकम के अंतर की रकम पर उसी दर से संदत्त की जानी चाहिए जिसमें धन संबंधी वाद में संदत्त की जाती है । (पैरा 30.5)

29. भूमि अर्जन के मामलों में न्यायालय फीस निम्नलिखित प्रकार से हो सकेगी :—

(i) कलक्टर के अधिनिर्णय के विरुद्ध न्यायालय को "निर्देश" के लिए आवेदन पर नाममात्र फीस प्रभारित की जाए ।

(ii) "निर्देश" पर विनिश्चय के विरुद्ध अपील में, न्यायालय द्वारा विनिश्चित रकम और दावाकृत रकम के बीच अंतर की रकम पर प्रभारित की जाने वाली फीस धन संबंधी वादों पर मूल्यानुसार फीस का 50 प्रतिशत । (पैरा 31.5)

न्यायालय फीस का प्रतिदाय/परिहार

30. उन मामलों पर, जिनमें पक्षकार न्यायालय से बाहर समझौता कर लेते हैं, न्यायालय फीस के प्रतिदाय की स्कीम निम्नलिखित प्रकार से हो सकेगी :—

समझौता मामले	फीस के प्रतिदाय की मात्रा जिसकी सिफारिश की गई है
(क) (i) विवाद्यक विरचित किए जाने के पूर्व	50%
(ii) साक्ष्य अभिलिखित करने के पूर्व	25%
(iii) लंबन के किसी अन्य प्रक्रम पर	25%
(ख) यदि समझौता अपील के प्रक्रम पर किया जाता है	50%

(पैरा 36.4)

31. राज्य सरकारें अन्य प्रकार के ऐसे मामलों की जांच करें जिनकी बाबत कुछ प्रक्रमों पर प्रतिदाय अनुज्ञात किया जाता है और यह विचार करें कि क्या उनके अपने-अपने राज्यों को इसी प्रकार की रियायतें दी जा सकती हैं यदि वे पहले ही नहीं दी गई हैं ।

(पैरा 36.5)

32. सभी राज्य सरकारें/संघ राज्यक्षेत्र प्रशासन न्यायालय फीस में समय-समय पर किए गए परिहारों की सूचियों के पुनर्विलोकन करें और उनमें वृद्धि करें, यदि ऐसा करना न्यायपूर्ण समझा जाता है । अन्य राज्यों द्वारा अधिसूचित परिहारों की सूचियां इस संबंध में सहायक होंगी । ये सूचियां, विधि और न्याय मंत्रालय के न्याय विभाग द्वारा अभिप्राप्त/संकलित की जाएं और सभी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों को परिचालित की जाएं ।

(पैरा 37.2)

रिट याचिकाएं

33. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाओं पर न्यायालय फीस की दर निम्नलिखित प्रकार से होगी :—

(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण	कोई फीस नहीं
(ii) मूल अधिकार	100 रुपए
(iii) कर संबंधी मामले	500 रुपए
(iv) प्रकीर्ण मामले	250 रुपए

(पैरा 39.4)

प्रकीर्ण मामले

34. अपकृत्य के मामलों पर नाममात्र फीस के उद्ग्रहण का प्रश्न विधि आयोग को उनकी जांच और सिफारिश के लिए निदेशित किया जाए ।

(पैरा 34.2)

35. प्रकीर्ण मदों पर फीस समाप्त करना साध्य नहीं होगा और इस लिए निश्चित न्यायालय फीस जो इस समय उद्गृहीत की जा रही है उद्गृहीत की जाती रहे । किंतु निर्णयों की प्रमाणित प्रतियों के लिए आवेदनों पर कोई फीस प्रभारित न की जाए ।

(पैरा 40.2)

36. वादियों द्वारा संगणना में कठिनाइयों और अतिसंदाय से बचने की दृष्टि से जब विषम अभिदान के अपेक्षित मूल्य के स्टांप उपलब्ध न हों तो निश्चित फीस पूर्ण रुपयों या अर्ध रुपयों में हो ।

(पैरा 41)

37. साधारण नियम के रूप में ऐसी पद्धति आरंभ करना जिसके द्वारा मुकदमें के विभिन्न प्रक्रमों पर न्यायालय फीस किस्तों में वसूल की जाए सभी मामलों में साध्य नहीं है । याचिकाओं/वादों/अपीलों के फाइल किए जाने के समय संपूर्ण न्यायालय

फीस की वसूली की वर्तमान पद्धति चालू रहे जब तक कि ऐसे मामलों में जिनमें कष्ट अन्तर्वलित हो, विनिर्दिष्ट रूप से अन्यथा अधिकथित न किया जाए । अर्थात् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष दावे।

(पैरा 42.3)

38. आदेशिका फीस के (जो वास्तव में न्यायालय फीस नहीं है) उद्ग्रहण की वर्तमान स्कीम चालू रहे ।

(पैरा 43)

39. राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में न्यायालय फीस की संरचना, जैसे भी आवश्यक हो, प्रत्येक दस वर्ष में पुनर्विलोकित और पुनरीक्षित की जाए ।

(पैरा 44)

टिप्पण : ऊपर दिए गए पैरा सं० समिति की ऊपर वर्णित रिपोर्ट से संबंधित हैं ।

MGIPN—279 M. of L & J/NID/89—31-1-92—500 Copies.

भारत के विधि आयोग की मुकदमेंबाजी के खर्चे पर एक सौ अठ्ठाईसवीं रिपोर्ट का शुद्धिपत्र :—

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़ें
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	1.4	2	निचे	नीचे
3	1.7	2 और 3	वृध्दि	वृद्धि
7	2.8	15 में से	"अधिनियम के उपबंधों के अधीन विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए नीति और सिद्धांत अधिकथित करें" शब्दों का लोप करें।	
9	2.14	5	खेत जो	खेत जो
10	2.18	17	पध्दति	पद्धति
11	3.3	14	का संपूर्ण खर्चा की	के संपूर्ण खर्चे को
20	3.29	14	बातों को	बातों के
20	3.31	8	या उसको	या उसके
21	4.2	6	लींग	लिंग
22	4.3	23	.....जुलाई, 1988	जुलाई, 1988
27	28 (शीर्ष)	—	य यालय फीस में कमी	न्यायालय फीस में कमी

प्रभासमुना—वि0 7—279 एम० ऑफ० लॉ० एण्ड जस्टीस/एन० डी०/89(शुध्दीपत्र)—15-7-92—500

PLD.92.CXXVIII (H)
500-1990 (DSK IV)

Price : (Inland) *Rs.* 265.00 (Foreign) £ 30.90 *or* $ 95 40 *Cents.*

प्रबंधक, भारत सरकार-मुद्रणालय, नासिक-422006 द्वारा मुद्रित
तथा प्रकाशन नियंत्रक भारत सरकार, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित
1992